Chap-5

:: पंचम् अध्याय ::

: 'काशी का अस्सी' उपन्यास की भाषिक-संरचना :

:: पंचम् अध्याय ::

: 'काशी का अस्सी' उपन्यास की भाषिक-संरचना :

प्रास्ताविक:

'काशी का अस्सी' डॉ. काशीनाथ सिंह का उपन्यास है। इसमें काशी अर्थात वाराणसी या बनारस के 'अस्सी लोकेल' के परिवेश को लेकर सातवें-आठवें दशक से सन 1998 तक की धटनाओं को उपन्यस्त किया गया है। 'अस्सी' काशी या बनारस का एक प्रसिद्ध विस्तार है, या यों कहें कि वह बनारस का 'हृदय' है, तो उसमे अत्युक्ति न होगी। बनारस विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार से बनारस का 'लंका' विस्तार शुरु हो जाता है। 'लंका' इसलिए कि रामलीला की दशवे दिन की लीला 'रावण-दहन' यहां संपन्न होती है। यही पास मे गंगा का 'अस्सी' घाट है। अत: उसके आसपास का विस्तार 'सस्सी' कहलाता है। असगर वज़ाहत का एक सुप्रसिद्ध नाटक है—'जिस लाहौर नहीं देख्या' – अर्थात जिसने विभाजन – पूर्व के उस लाहौर को नहीं देखा उसका पृथ्वी पर जनम लेना ही बेकार है। ठीक यही बात हम 'शहरे बनारस' के 'अस्सी' के लिए कह सकते है कि जिसने 'अस्सी' नहीं देखा उसने कुछ नहीं देखा और उसका जनम लेना बेकार है। 'काशी का अस्सी' अर्थात यह 'अस्सी', और एक दूसरा अर्थ यह भी अभिप्रेत है कि काशी का, काशीनाथ सिंह का अस्सी' । जो 'अस्सी' इस लेखक ने देखा, वही उसका प्रतिपाद्य है।[1]

"हंसी, धीरे-धीरे खत्म हो रही है दुनिया से। पश्चिम के लिए इसका अर्थ रह गया है— कसरत, खेल। क्लब,टीम, एसोसिएशन, ग्रुप बनाकर निरर्थक, निरूद्देश्य, जबर्दस्ती जोर-जोर से 'हो-हो-हा-हा' करना। इसे हंसी नहीं कहते। हंसी का मतलब है जिन्दादिली और मस्ती का विस्फ़ोट। जिन्दगी की खनक। यह तन

की नहीं, मन की चीज़ है। यह किसी भी सनसनीखेज खबर से कम नहीं कि जम्बूद्वीप में एक ऐसी भी जगह है जहां हंसी बची रह गई है।"

जिस प्रकार 'मैला आँचल' में मेरीगंज गांव है, 'रागदरबारी' में 'शिवपालगंज' है, ठीक उसी तरह यहां 'अस्सी' ही 'अस्सी' है। प्रस्तुत अध्याय में इसी उपन्यास की 'भाषिक-संरचना' को खगालने का हमारा उपक्रम है।

चरित्र-सृष्टि और 'अस्सी' की भाषा:

"शहर बनारस के दक्खिनी छोर पर गंगा किनारे बसा ऐतिहासिक मुहल्ला अस्सी। अस्सी चौराहे पर भीड़-भाड़वाली चाय की एक दुकान। इस दुकान में रात-दिन बहसों में उलझते, लड़ते-झगड़ते गाली-गलौज करते कुछ स्वनामधन्य अखाड़ए बैठकबाज। न कभी उनकी बहसें खत्म होती है, न सुबह-शाम। जिन्हें आना हों आएं, जाना हो जाएं। इसी मुहल्ले और दुकान का 'लाइव शो' है यह कृति—उपन्यास का उपन्यास और कथाएं की कथाएं। खासा चर्चित, विवादित और बदनाम। लेकिन बदनाम सिर्ग अभिजनों में, आम जनों में नहीं। आम जन और आम पाठक ही इस उपन्यास के जन्म की अमीन रहे है।"[2]

उपर्युक्त परिच्छेद में जिन 'स्वनामधन्य अखाड़िए बैठकबाज' लोगों की चर्चा की गई है वे ही इस उपन्यास के चरित्र हैं: तन्नी गुरु, गिरिजेश राय, (भाकपा), नारायण मिश्र (भाजपा), अंबिकासिंह (कभी काग्रेस कभी जद), रामजी सिह, गया सिह(परंपरा के रक्षक और मुहल्ले के 'डीह'), पप्पू चायवाला, वीरेन्द्र श्रीवास्तव, रामवचन पाडे (अस्सी के बड़े-बुजुर्ग नेता), देवव्रत मजुमदार (पूर्वांचल के नौजवान समाजवादियो के पुरखा), हरिद्वार पांडे (भाषण-कला के बैजू बावरा), अशोक पांडे(नेता), रामजी राय (जन-प्रतिनिधि), औघड़ कीनाराम (एक आप्रवासी संत), चौथेराम यादव (भंगाचार्य हिन्दी प्रोफ़ेसर), मिठाई-लाल गुप्ता (सुरों की चलती-फ़िरती दुकान), ट्रिपुलसिंह(शिवशंकर सिंह-चुनावी मेला के समापन-समारोह के मुख्य अतिथि वक्ता), लाढ़ेराम शर्मा (नाकेराम शर्मा उर्फ़ बारबर बाबा); मुतफ़न्नी गुरु, पन्नीगुरु, अठन्नी गुरु, मन्नी गुरु, अठन्नी गुरु, कन्नी गुरु (तन्नी गुरु की औलादें), ऐसे गुरुओं, सन्तों, असन्तों और घोघा

बसन्तों की यह एक विचित्र दुनिया है।[3] गालियां ही यहां की संज्ञाएं है, गालियां ही क्रियाएं, गालियां ही विशेषण और गालियां ही सर्वनाम आदि सब।

अब भाषा की मिट्टी ने इन चरित्रों को कैसा घाट दिया है उसकी पड़ताल भी कुछेक उदाहरणों से कर ली जाए। डॉ. गयासिंह अस्सी मुहल्ले के 'डीह' हैं। इनके कई अमर वाक्य हैं, जैसे—मैने शिवप्रसाद सिंह ('अलग अलग वैतरणी' के लेखक) रुपी पौधे को उगाया और सींचकर बड़ा किया तो त्रिभुवनसिंह (उपन्यास साहित्य के आलोचक और काशी विद्यापीठ के कुलपति) ने उखाडकर अपने गमले में लगा लिया। मैने शिवप्रसाद को कंडालन चाय, खंचियन रसगुल्ला, झउवन पान और टनन समोसा खिलाया है। जब सौ रचनाकार मरते है तब एक आलोचक पैदा होता है।[4] जब अस्सी पर भाँग के लाइसेंस को लेकर बावेला मचा और दारोगा शर्मा गिरफ़्तार करने आ पहुंचा तब गयासिंह ने माइक संभालते हुए दारोगा को कहने लगे –'शर्माजी। देख रहे हो मेरा सिर? खल्वाट? खोपड़ी पर एक भी बाल नहीं। तुम्हारे डंडे का वार इसपर भरपूर पड़ेगा। मारो, मार सको तो। लेकिन शर्मा... सड़ी के! तुम काशी की संस्कृति और परंपरा मिटाना चाहते हो ? तुम्हारी हैसियत कि तुम हजारों-हजार साल से चली आ रही काशी की संस्कृति और परंपरा मिटा दो? तुम्हारे जैसे न जाने कितने दरोगा-दरोगी आए और गए; अस्सी कायम है और कायम रहेगा। 'इसके बाद उन्होंने उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक अलंकार की सहायता से जब यह बताना शुरू किया कि किस तरह भाँग बनारस की आबोहवा के लिए अनिवार्य है, भाँग का सम्बन्ध दिव्य निबटान से है, 'दिव्य निबटान' का सम्बन्ध शरीर और स्वास्थ्य से है, स्वास्थ्य का सम्बन्ध मानव-अस्तित्व से है और मानव-अस्तित्व का सम्बन्ध अस्सी से है तो शर्मा लाठी-बन्दूकधारी अपने लश्कर के साथ वहां से खिसकने लगा।[5]

अब तन्नी गुरु की बोली-बानी सुनो। गुरु अस्सी के चमत्कारों में से एक है। लोगों का मगज ही उनका कलेवा है। कभी लेखक के साथ (डॉ. काशीनाथ सिंह के साथ) पढ़ चुके है। एक बार गुरु उनको एक तरफ़ ले जाकर पूछते है- "मेरे मन में एक डाउट है। देखो, झूठ मत बोलना। चौथीराम जादो तुम्हारे दोस्त। मुकुन्द जाधो के यहां चाय पीते हो। बर्फ़ीवाले सीताराम जाधो से भी तुम्हारी घुटती है, हम

देखे हे। एक और फ़ंटूस तुम्हारे आगे-पीछे घूमता है—रामौध जादो। कल कोई बोला कि दिल्ली में भी कोई जादो है (राजेन्द्र यादव) जिसकी किताब में अस्सीचरितम की घोषणा है। अब ये बताओ, तुम भी तो जादो नहीं हो?... तुम उस दिन गोपला की दुकान पर मंडल-मंडल काहे चिल्ला रहे थे?... तुम्हें याद है न! जब यह बिपिया (वी. पी. सिंह)... सड़ी का हर जगह से दुर-दुराया और लतियाया जा रहा था तो यही अस्सी—भदैनी है जिसने उसका तिलक किया और कहा—राजर्षि! राजा नहीं फ़कीर है, देस की तकदीर है! और सुसरा दिल्ली गया तो हमारे ही उसमें डंडा कर दिया!... और अब तुम भी पगलाए गए हो का? चलो, पान खिलाकर प्रायश्चित्त करो! ए देवराज! दो ठो पान बढाना तो..."[6] यह है तन्नी चरितम ! 'माले मुफ़्त दिले बेरहम! वही लट्ठमार भाषा। तन्नी गुरु की भाषा में वही बनारसी लहजा है। 'देश' के लिए 'देस', यादव के लिए कभी जाधो, कभी जादो। रामावध के लिए 'रामौध'। वी. पी. सिंह तक को नहीं बख्शा—बिपिया और सुसरा तक कह डाला और वह बनारसी गाली ऊपर से!

पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम रामजी राय का जिक्र कर चुके है। वे बिना गाली के एक वाक्य नहीं बोल सकते। उनके भाजपा-प्रवेश 'पर एक बानी देखिए-'आप जैसी प्रतिभा भाजपा में कैसे गई राय साहब? शैलेन्द्र ने पूछा हंसते हुए। रामजी ने जाचती निगाहों से उसे देखा—'क्यों? मेरी जैसी प्रतिभा केलिए ही वह पार्टी है। 'फिर धीरे से मेरे कान में बोले—'मेरा पौरा ही ऐसा है डाक साहब! कि जिस पार्टी में गया उसका 'राम नाम सत्य' हो गया! पहले कांग्रेस में गया, उसका देख लीजिए; उसके बाद जनता दल में गया, उसे भी देख लीजिए, अब जिस में आया हूं, थोड़ा इन्तजार कर लीजिए! '...' आप उसीमें है और उसीक अनभल चाहते है? 'शैलेन्द्र बोला । ...' लौंड़े हो, तुम नहीं समझोगे...' रामजी ने पीक थूंकी और कहा—

"जानते है यह लूंगी किसकी दी हुई है जो पहने हूं? सुलेमान की! मेरा दोस्त था! बजरडीहावाले दंगे में उसे मार डाला सालों ने! तो यह कैसे भूल सकता हूं मैं? '...'आप गालियां क्यों देते है इतनी? 'शैलेन्द्र का प्रश्न । ... सड़ी के! 'उन्होंने गुस्से में देखा—'जब देता था तब देता था। और में देता भी कहां था? मेरे

मुंह से निकल जाती थीं।[7] 'ये है रामजी राय अपने पूरे बनारसी रंग में। गाली देते जाते है और कहते है कि गाली कहा दे रहा हूं। जब देता था, तब देता था, और तब भी मुंह से निकल जाती थीं। बेचारे रामजी राय क्या करें। उनके बारे में पार्टी-पलट वीरेन्द्र श्रीवास्तव कहते हैं ...।'ऐ खुदा! अगर नेता बनाना तो मजूमदार मत बनाना। अगर औरत बनाना तो छिनार मत बनाना। अगर आदमी बनाना तो भूमिहार मत बनाना। गर भूमिहार बनाना तो रामजी राय मत बनाना।[8] वीरेन्द्र पहले समाजवादी पार्टी में था, इसलिए बात-बात में 'ए खुदा' बोलता है।

ऊपर जिन उदाहरणों को दिया गया है उनमें हम देख सकते है कि चरित्रों के अनुरूप भाषा का प्रयोग हुआ है। बल्कि कहना चाहिए कि चरित्र के अनुरूप ही भाषा ने भी अपना रुप बदला है। एक बात सबमें कोमन है और वह है कोई भी पात्र बिना गालियों के बोलता नहीं है, क्योंकि ये गालियां ही 'अस्सी' की संस्कृति का एक अंग है। बनारसी होकर गाली न बोले तो बनारसी काहे का? और बनारसी भी कैसा? ठेठ अस्सी का !

'देशकाल' या वातावरण और 'अस्सी' की भाषा:

'देशकाल' का भाषा से बहुत करीबी रिश्ता होता है। 'देश' का अर्थ है स्थान। वैसे कहा जाता है, जैसा देश वैसा भेश। परंतु पहिनावा ही नहीं, देश के हिसाब से भाषा भी बदलती रहती है। चार कोश अर्थात लगभग बारह मील के फ़ासले पर भाषा या बोली में फ़रक आ जाता है। 'देश' का सम्बन्ध 'जाति' से भी है। किसी स्थान-विशेष या गांव-विशेष में कुछ जाति विशेष के लोग पाए जाते है। 'मैला आँचल' में जाति के लिए 'टोली' शब्द का प्रयोग हुआ है, यथा—संथाल टोली, तंतमा टोली, राजपूत टोली आदि-आदि। और इन सबकी अलग-अलग बोलियां है, बानिया हैं। प्रस्तुत उपन्यास की ही बात करें तो इसमें एक शब्द उपलब्ध होता है—लाढ़ेराम। यह घाट का शब्द है। घाट के पंडों के बीच यह एक 'कूटशब्द' है, जिसका अर्थ होता है-टका, रुपया, पैसा। 'का करी रेती, का करी मेला? लाढ़ेराम गुरु बाकी सब चेला।'[9] कई बार तो ऐसा भी होता है कि किसी शब्द-विशेष का अर्थ आम लोगों में, आम परिस्थितियों में, शब्दकोशों और पुस्तकों में कुछ होता है, पर किसी परिवेश-विशेष में उसका अर्थ बदल जाता है, जैसे—

'बैठना'। यह शब्द एक क्रियावाची शब्द है। 'बैठ' धातु से व्युत्पन्न हुआ है। पर कहीं-कहीं वेश्या-बाजारों में उसका एक दूसरा ही गर्भित अर्थ निकलता है— कितनी बार समागम करोगे?—कितनी बार बैठोगे? एक बार या दो बार?'[10]

सामान्यतौर पर 'बहनजी' शब्द सम्मानसूचक है। किन्तु लाक्षणिक भाषा में 'बहनजी' उसे कहा जाता है जो ज्यादा फ़ैशनेबल न हो और सीधे-सादे ढंग से रहती हों। परंतु मुंबई की फ़िल्मनगरी में 'बहनजी' शब्द का एक अलग अर्थ है— 'रखैल!'[11] उसी तरह 'अग्नि-कन्या' शब्द का शाब्दिक अर्थ तो 'अग्नि की कन्या' ऐसा हो सकता है। लाक्षणिक भाषा में कोई गुस्सैल या क्रोधी कन्या को 'अग्नि-कन्या' कह सकते है, पर कोलकात्ता के सोनागाछी विस्तार में 'अग्नि कन्या' उसको कहते है जिस वेश्या को 'एइड्स' की बीमारी हो या जो एच आई वी पाजिटिव हो।[12] 'पोजिटिव शब्द से याद आया। सामान्यतौर पर 'पोजिटिव' शब्द को अच्छा माना जाता है। इसीलिए तो कहा जाता है—'बी पोजिटिव!' पर मैडिकल-सायन्स में यदि किसीका परीक्षण कैंसर केलिए होता है और यदि उसके रिपोर्ट में आता है कि उसे कैन्सर है, तो मैडिकली उस रिपोर्ट को 'पोज़िटिव' कहा जाता है। अभिप्राय यह कि भाषा और शब्दों का परिवेश से बड़ा गहरा नजदीकी रिश्ता है। उपन्यास में सामान्यतौर पर तो भाषा लेखक की होती है। वर्णन-विवरण-विश्लेषण में हम उस लेखकीय भाषा को ही देख सकते हैं। कह सकते हैं कि 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास की भाषा अधिकांशत: लेखकीय भाषा ही थी। परंतु 'मैला आँचल' या प्रस्तुत उपन्यास 'काशी का अस्सी' में लेखकीय भाषा कमसे कम होती है। यहां तो परिवेश ही भाषा को लेकर आता है।

उपन्यास के प्रारंभ में लेखक कहते हैं कि 'अस्सी और भाषा के बीच ननद-भौजाई या साली-बहनोई का रिश्ता है।'[13] 'कमर मेंगमछा, कंधे पर लंगोट और बदन पर जनेऊ—यह यूनिफ़ोर्म है अस्सी का!'[14] मस्ती से घूमने की मुद्रा यहां का आइडेंटिटी कार्ड' है। जार्ज बुश या मार्गारिट थैचर या गोर्बाचोव चाहे जो आ जाए (काशी नरेश को छोड़कर) सबके लिए 'हर हर महादेव' के साथ'... सड़ीकें का 'जय जय कार ' यहां का नारा है। 'गुरु' यहां की नागरिकता का

'सरनेम' है।'न कोई सिंह, न पांड़े, न जादो, न राम! सब गुरु। जो पैदा भया वह भी गुरु और जो मरा वह भी गुरु । वर्गहीन समाज का सबसे बड़ा जनतंत्र है अस्सी।[15]

'दिव्य निबटान', 'बहरी-अलंग', 'पिड़काह', (चिड़चिड़े), पप्पू की चाय की दुकान' (बनारस का श्रीराम सेंटर), 'रामजी राय' (भोजपुरी गालियों का माइक टायसन), 'हडबोंगई', 'भंगाचार्य', 'भैस चंसलर', (वाइस चांसलर),' 'भुंइहार', 'चेहरे पर खिलान लेकर आना', 'पंवारा', 'ट्रिपुलसिंह', 'लंडबहेर लेखक'[16], जैसे शब्द अस्सी के परिवेश को खोलते है।

नाम भी कई बार जगह-विशेष की पहचान बन जाते है। ट्रिपुलसिंह', 'तन्नीगुरु', 'लाढ़ेराम शर्मा', 'नाकेराम शर्मा', 'मुतफ़न्नी गुरु, पन्नी गुरु, अठन्नी गुरु, कन्नी गुरु, कीनाराम औघड़ [17] जैसे नाम भी अस्सी की पहचान है।

दूसरे कुछ शब्द ऐसे है जिनके बनारसी या कहें अस्सी के अर्थ भिन्न है, जैसे परम, व्यवस्था और कार्यक्रम ऐसे ही शब्द है। अस्सी वाले 'परम' अर्थ लगाते है---'चूतिया'![18] इसी तरह अस्सीवासी 'व्यवस्था' का अर्थ करते है—'भाँग'। क्योंकि भाँग के लिए पूरी व्यवस्था करनी पड़ती है—भिगाने- धोने की, छानने-घोटने की, सिलबट्टे की। घण्टों लगते है इसलिए उसे 'व्यवस्था' कहते है। कार्यक्रम मंजे दारू या शराब। बोतल खोलिए, गिलास में ढालिए, चुस्की मारिए! कार्यक्रम चलाइए-देश को अस्थिर, अव्यवस्थित और तबाह कीजिए।[19] अंत: अस्सी वालो के हिसाब से 'कार्यक्रम' की नहीं 'व्यवस्था' की जरूरत है।

समय-समय पर यहां से उठने वाले नारे 'देशकाल' के दूसरे तत्व 'काल' अर्थात समय को निरूपित करते है। यथा 'हर हर महादेव' (यहां का परमेनेण्ट नारा है, बीच में उसका स्थान 'श्रीराम ' ने भी लेलिया था, पर ज्यादा समय नहीं चला।), 'वी. पी. सिंह जिन्दाबाद' (3 अगस्त 1990 में देवीलाल के निकाले जाने पर), 'बी. पी. सिंह मुर्दाबाद' (15 अगस्त 1990 को मंडल आयोग की घोषणा के बाद), 'पी लो पाउच, भर लो पेट, फ़िर न मिलेंगे जवाहर सेठ') जवाहर जायसवाल, यू पी का सबसे बड़ा दारु का ठेकेदार, जिसे बनारस का 'माल्या' कह सकते है। 'कांख में भाजपा, अंगूठे पर बसपा', 'पत्थर रखो छाती पर, मोहर मारो हाथी पर', 'भाई, भतीजा, भानजा, भांड, भूत, भुंइहार, ए छओ भकार से सदा

रहो हुसियार', 'काम करो बनिये का मजा लो दुनिये का', 'जो अहिर समझावै', 'ऊ बावन वीर कहावै', 'राजा नहीं फ़कीर है,' 'देस की तकदीर है!!', 'अब की बारी, अटल बिहारी', 'करो सोनिया की तैयारी, लेट कर गये अटल बिहारी,' 'बनारस में बेनिया दिल्ली में सोनिया', आदि-आदि।[20]

इसके अलावा मौके-माहौल पर याने चुनावों में तरह-तरह के लोकगीत, जोगीड़े बना देना यह भी बनारस की एक भाषिक खासियत है। यथा— 'कवन देश का राजा अच्छा (कवन देस की रानी?) (कवन देस का कपड़ा अच्छा) (कवन देस का पानी ?) (जोगीड़ा सा रारारा) (जोगीड़ा सा रा रा रा) ... कानपुर का कपड़ा अच्छा (राजघाट का पानी) अरे, रामनगर का राजा अच्छा) (इटलीगढ़ की रानी) जोगीड़ा सा रा रा रा... [21]

अभिप्राय यह कि प्रस्तुत उपन्यास में परिवेश या वातावरण या देशकाल अपनी भाषा लेकर ही आया है। एक बात ध्यानार्ह रहे, 'देस', 'होसियार', आदि शब्दों की सही बर्तनी या मानक बर्तनी 'देश' और होशियार है। परंतु पूरबी भाषाओं में 'श-' का'स' हो जाता है।

कथोपकथन में भाषा का योग:

कथोपकथन में तो पात्रों की ही भाषा होती है। लेखकीय भाषा तो 'पेचवर्क' के रुप मे आती है। एक-दो उदाहरणों द्वारा इसे स्पष्ट किया जायेगा—

'खड़ाऊ पहनकर पाँव लटकाए पान की दुकान पर बैठे तन्नी गुरु से एक आदमी बोला---'किस दुनिया मे हो गुरु! अमरीका रोज-रोज आदमी को चन्द्रमा पर भेज रहा है और तुम घण्टे भर से पान घुला रहे हो?...

मोरी में 'पच' से पान की पीक थूककर गुरु बोले----'देखो!। एक बात नोट कर लो! चन्द्रमा हो या सूरज -- ...सड़ी के जिसको गरज होगी, खुदै यहां आएगा। तन्नी गुरु टस से मस नहीं होगे हियां से! समझे कुछ? ... 'जो मजा बनारस में, न पेरिस में, न फ़ारस में'।[22]

इस संवाद में 'गुरु', '... सड़ी के ', 'खुदै', 'हियां', आदि शब्दों से इसका बनारसी 'टोन' झलकता है। दो-तीन वाक्यों के वार्तालाप में ही गुरु ने एक मुहावरा भी पेल दिया---' टस से मस न होना'।

एक और संवाद सुनिए—

दिलचस्प नजारा सिर्फ़यह है—और वह भी शुरू से ही—कि चौराहे की संसद में बहुमत हमेशा भाजपा विरोधियों का रहा, जब कि इलाके के मतदाता भाजपाई है।

'सुन रहे है, महाराज? 'कौशिकजी बोले।

'कहिए,सुन रहे है।'

'तो आप लंका से आने का काम कर रहे है कि गोदौलिया से?'

'लंका से... 'मैने उन्हें देखा 'वहीं से आरहा हूं।'

'वहीं से नहीं आरहा हुं, वहीं से आने का काम कर रहा हूं।'

'वहीं से नहीं आ रहा हूं, वहीं से आने का काम कर रहा हूं- ऐसा बोलिए। अब आप पप्पू की दुकान में जने का काम करेंगे, फ़िर बैठने का काम करेगे। फिर चाय पीने का काम करेंगे। फिर चाय पिने का काम करेंगे।... मैंने अबकी कुतूहल से कौशीक जी को देखा। इधर मत देखिये। यह भाषा सोशलिस्टवे ...सड़ी वाले बोलते हैं। कल एक मिला। एक भाषण दे गया हैं, यहीं पर। सीधे-सीधे नहीं कहेंगे, साले कि लंका से आ रहा हूँ, कहेंगे कि लंका से आने का काम कर रहा हूॅ। ...सडी के ई कौन-सा है जो कर रहे हो? [23]

तो यह है बनारसी रग। हमेशा पोलिटिक्स को, नेताओं को मा-बहन की गालियां देते रहेंगे, पर बाते करेंगे, वही पोलिटिक्स की।

वर्ण-विचार:

भाषा की 'ध्वनि' के बाद की इकाई अक्षर या वर्ण है। कई बार इकाध अक्षर के इधर-इधर हो जाने से अर्थ में काफ़ी अंतर आ जाता है। इसका एक उदाहरण 'काशी का अस्सी' में मिलता है। लेखक की टिप्पणी है—'मित्रों, अस्सी का अपना शब्द-कल्पद्रुम' है। दुनिया जानती है। इसके पास और कुछ नहीं, शब्दों की ही खेती है।[24] इसी संदर्भ में लेखक आगे कहते हैं—ये 'कल्पद्रुम' के कुछ तिनके है--- कुछ झड़े, कुछ सड़े, कुछ सूखे बेजान। ऐसे जाने कितने तिनके है जो हवा में – अस्सी की`हवा में उड़ते रहते हैं। वे कभी पकड़ में आते है, कभी नहीं आते। मेरी

भी पकड़ में नहीं आए थे पहली बार जब मैं एक 'श्रद्धेय' के चरण-स्पर्श के लिए झुका था। आधा ही झुक पाया था कि बूढ़े पंडितजी पीछे हटते हुए मुस्कुराकर बोले -- 'बालक, बस चरण ही छूना, आ-चरण नहीं। वहां करंट है। 'बात तब मेरी समज मे आई जब बगल में खड़े दूसरे पंड़ित ने हंसते हुए कहा—अब आ-चरण में कहां करंट? वह तो लत्ता हो चुका महाराज।'[25] यहां पर एक 'वर्ण' की हेरा-फ़ेरी में शब्द परिवर्तन और अर्थ-परिवर्तन हुआ है। 'चरण' अर्थात् पैर और 'आचरण' अर्थात् व्यवहार। 'चन्द्रहास' नाटक में उसकी नायिका 'विषया' ने यही किया था। 'विष' शब्द के पहले बाद में उसने केवल 'या' लगा दिया। अर्थ ही नहीं पूरा परिदृश्य बदल गया। हमारे एक परिचित भाजपा-विरोधी है, वे हमेशा अड़वाणीजी को 'भड़वाणीजी' ही कहते है। कितना फ़र्क हो जाता है एक वर्ण के जुड़ जाने से । 'गुजरात समाचार' के एक 'स्तंभ-लेखक' अक्षय अंताणी 'बोज विनानी मोज' (बिना किसी बोझ की मोज) में वर्ण-विपर्यय द्वारा हास्य की सृष्टि करते है। अभी हाल ही में उन्होंने लिखा था---' खाता रहे एनां स्विस बेंकमां खाता रहे'—अर्थात जो खाते रहते है (रिश्वत) उनके एकाउण्ट (खाते) स्विस बेंकों में होते है। इसी लेख में उन्हों ने 'अष्टपुत्रो भव' के स्थान पर 'अष्टकुत्रो भव' के द्वारा हास्य उत्पन्न किया था।[26] मिमिक्री कलाकार प्राय: इस कला में माहिर होते है। 'इन्द्रासन' के स्थान पर 'निद्रासन' हो जाने से क्या हुआ था। रामायण में उसकी कथा मिलती है।

शब्द-विचार:

भाषा की पहली सार्थक इकाई 'शब्द' ही है। शब्द से व्यक्ति के चरित्र का पता चलता है। शब्द से जगह की तासीर का पता चलता है। गुजरात में सूरत के आसपास के लोग प्राय: 'स' को 'ह' ही बोलते है। वे 'सुरत' को 'हुरत' कहेंगे। अस्सी की तरह एक दूसरी विशेषता सूरत की यह है कि अस्सी के रामजी राय की तरह असली सूरती भी बिना गाली के बात ही नहीं कर सकता। खैर, बात हम यह कर रहे थे कि शब्द की ताकत का अंदाजा लगाना बड़ा ही मुश्किल है। हमारा उपक्रम यहां उपन्यास में आये हुए शब्दों पर विचार करना है।

(क) ग्रामीण पृष्ठभूमिवाली शब्दावली: वैसे तो बनारस शहर है, पर उसमें आसपास के गांव-खेड़ों के लोग आकर बस गए है। उपन्यास में एक कथन है- 'तो

पूर्वांचल देश का सबसे बड़ा चूतिया, एकदम कंडम, जाहिल, निकम्मा, बेवाहियात। जब सारे राजाओं, सामन्तों, व्यापारियों ने कब्जिया लिया पूरा काशी, तब गोरखपुर, देवरिया, बस्ती, फ़ैजाबाद, बलिया, बक्सर, छपरा, सासाराम आरा वगैरह-वगैरह के तालुकेदारों-जमींदारों को सुध आई—आई कि ... सड़ी के काशीधाम अपना, देस-जवार अपना और अपना ही वहां कोई ठिकाना नहीं।[27]

यहां जो उद्धरण दिया है उसमें ग्रामीण पृष्ठभूमिवाले शब्द तो है ही—कंडम, बेवाहियात, कब्जिया लेना आदि-आदि—पर प्रकारान्तर से बनारस में कहां-कहां से लोग आकर बसे है, उसका भी उल्लेख है। पूरे उपन्यास में इस तरह के शब्द हैं, हम केवल 'भात-पतीली' न्याय के हिसाब से कुछेक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है—

खुदै, हियां, चुडुक्कों (फ़ालतू), पिड़काह (चिड़चिड़े), बकरा जैइसा दाढ़ी, चदरा-ओदरा, बकलोल(मूर्ख), दिव्य निबटान, कंडायन चाय, खंचियन रसगुल्ला, दिसा-फ़राकत, जादो (यादव), माले मुफ़्त दिले बेरहम, बाटी-चोखा, टिकटी (अर्थी) हड़बोंगई, छिनरी के, बढ़ियाईनदी, कंगन छुवाई, गंगा पूजैया, औघड़, सोशलिस्टवा, फ़टकलंडगिरधारी, चैस चंसलर, भुंइहार, कोंहड़ा (कददू), जोगीड़ा, गदहे के फ़ोद से लिखना, अगोरना, पंवारा, भजपैया, कमच्छा सट्टी, गवनवा, कहरवा, बभना, छूटल, मिलिलेहुं भेंट अकवारी, लंडबहेर लेखक, इश्टूडेंटो, किडी कोन्वेण्ट, गंडऊ गदर (संगोष्ठी), हेन होना चाहिए, तेन होना चाहिए, व्यवस्था (भाँग), कार्यक्रम (शराब), कागावासी, सत्यानाशी, मनबढ़ (मजबूत), हेकड़बाज, पौरा (हिसाब), अनभल (बुरा), गदरहा (अस्सी-निवासी), कौरा खानेवाले (कौर-कौर खाने वाले, मांगकर खाने वाले), तिगटा (एक पन्ने का हाथ से लिखा अख़बार), लाढ़ेराम (रुपया-पैसा), किचाइन करो (बरबाद करो), पड़ाइन, मुतफ़न्नी, ठगवा, लूटल, बिरहिया, गदहबेला, कहनवां, जपनवा, कइसन, बाउर, नउवा, डाहै, ढरकउवा, सगरो (सम्पूर्ण), बहरी अलंग, निरगुन, जोधा (योद्धा), हते (थे), छत्री (क्षत्रिय), जुधिष्ठिर, अकासो (आकाश), ठाढ़ा (खड़ा) आदि-आदि[28]

यहां कुछ शब्द तो ऐसे है जो विशुद्ध रुप से बनारस या अस्सी की पैदाइश है। 'पिड़काह', 'दिव्य निबटान', 'बकलोल', गंडऊ गदर, गदरहा; बहरी अलंग' आदि कुछ शब्द ऐसे है। 'व्यव्स्था' और 'कार्यक्रम' जैसे शब्दों के अर्थ तो अलग है, पर अस्सीवालों की उनकी व्याख्या अलग है जो पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है। अन्य ग्रामीण शब्दों में भोजपुरी, अवधी आदि के शब्द ज्यादा है।

(ख) आवृत्तिमूलक शब्दावली: ऐसे शब्दों में शब्द को दुहराने की प्रवृत्ति होती है। यह दुहराव प्राय: ध्वन्यात्मक होता है। कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं—

'चदरा-ओदरा, साहित्य-फ़ाहित्य, हुआं-हुआं, भों-भों, नंग-धडंग, चोरी-छिनैती(ध्यान रहे, गुजराती में भी ये दोनों शब्द साथ-साथ चलते है, तथा--- चोरी-छिनारवुं), कांव-कांव, झांव-झांव, दुनिया-हरमुनिया, बेनिया-सोनिया (बेनिया बनारस का एक विस्तार है, जहां सोनिया का व्याख्यान रखा गया था।), रांड-सांड, सीढ़ी-संन्यासी, गंडऊ-गदर (गंडुओं की क्रान्ति), रुपया-कौड़ी, पटापट-खटाखट,झांसा-पट्टी, पचास-साठ, दाएं-बाएं, कूड़ा-कचरा (कहीं-कहीं कूडा-करकट शब्द भी प्रचलित है।) आदि-आदि।[29]

जिस प्रकार कहावत-मुहावरों से भाषा की प्रभावात्मकता बढ़ती है, उसी तरह इस तरह के शब्दों से भी भाषा में ध्वन्यात्मकता और अनुप्रासात्मकता के कारण भाषिक-प्रभाव बढ जाता है।

(ग) नामधातु-क्रियावाची शब्द:

क्रियाओं के प्रकार में एक प्रकार है—नामधातु क्रिया। यह प्रकार थोड़ा हटकर है। व्याकरण के जानकार जानते हैं कि अधिकांश भाषाओं में 'क्रिया' के मूल में कोई धातु होता है। व्याकरनिक दृष्टि से 'धातु' का अर्थ है क्रिया का संक्षिप्त रूप। जैसे'पढ़ना' का पढ़', लिखना का 'लिख' आदि। मोटे तौर पर 'धातु' में 'ना' प्रत्यय लगाने से हिन्दी में क्रिया रुपों का निर्माण होता है। गुजराती में 'वुं' प्रत्यय लगाने से क्रियारुप बनते है, जैसे चाल-चालवुं, बोल-बोलवुं इत्यादि। किन्तु नामधातु क्रिया उसे कहते है जहां क्रिया का निर्माण धातु से न होकर किसी और व्याकरणिक पद से होता है, जैसे लतियाना, बतियाना, गरियाना आदि-आदि।[30] जैसे-जैसे भाषा का विकास होता है, भाषा संपन्न और समुन्नत होती है, वैसे वैसे

इस प्रकार की क्रिया वाले शब्दों की संख्या में वृद्धि होती रहती है। हमारे आलोच्य उपन्यास में भी इस प्रकार के कई नामधातु-क्रियावाची शब्द आये है क्योंकि यह प्रवृत्ति ग्रामीण भाषाओं और बोलियों में भी पायी जाती है। यहां कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

'कवियाये लोग, परपराने लगना, गरियाना, पदियाना, कब्जियाना, दुरदुराया, लतियाया, सठियाया, बौराया आदि-आदि।[31]

यह प्रवृत्ति अंग्रेजी में तो इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि कई शब्दों को क्रिया बना दिया जाता है, जैसे ए बुक तो किताब और' टु बुक' तो पहले से किसी चीज को ले लेना। 'नेम' अर्थाअत नाम या संज्ञा,पर 'टु नेम' याने उल्लेख करना, 'लिस्ट' याने सूची, पर 'टुएनलिस्ट' याने सूची बनाना।एक दोहा मेरी स्मृति में कौध रहा है—

पहले सठियाते रहे,अब कुर्सियाते लोग।
धृतराष्ट्रसे होते गये, आंखोंवाले लोग॥[32]

यहां पर 'कुर्सी' से बनी 'कुर्सियाना' नामधातु क्रिया पूरे वक्तव्य में एक अनोखापन ला देती है।

(घ) व्यंग्यात्मक शब्दावली:

'राग दरबारी' की भांति 'काशी का अस्सी' भी एक व्यंग्यात्मक उपन्यास है। 'व्यंग्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'वि+अंग' से मानी गई है। व्यक्ति, समाज, देश या वस्तु का कोई अंग जब अपने उपयुक्त स्थान पर नहीं होता, तब वह व्यंग्य का आलंबन बन जाता है।हमारे सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, शैक्षिक प्रभृति क्षेत्रों में परिव्याप्त विसंवादिता, विषमता, विद्रुपता, विकलांगता आदि के कारण ही हमारे समकालीन साहित्य में व्यंग्य के तेवर बढ़े-चढ़े रूप में मिलते है,[33] प्रस्तुत उपन्यास को हम 'हास्य-व्यंग्य' का उपन्यास कह सकते है, हालांकि दोनों की प्रवृत्तियां अलग-अलग है। 'हास्य' कोमेडी के निकट है, जब कि 'व्यंग्य' सेटायर (Satire) के। 'सेटायर' शब्द 'सर्टरस' नामक विचित्र जन्तु से व्युत्पन्न हुआ है। रोम-यूनान में सर्वप्रथम यह शब्द प्रचलित हुआ। 34 वैसे शब्द व्यंग्यात्मक नहीं होते, संदर्भ उनको व्यंग्यात्मक बनाते है, तथापि कुछ शब्द ऐसे होते है जिनको

पढ़ते या सुनते ही हमारे मन में व्यंग्य के भाव पैदा होते है '। यहां कुछ इस तरह के शब्दों को ही सूचीबद्ध किया गया है—

'दिव्य-निबटान', 'चुडुक्क', 'पिड़काह', मुहल्ले के डीह, 'भाजपाई चरवाहे,' 'भोजपुरी गालियों के माइक टायसन', 'चैतन्य-चूर्ण', 'रांड-रोवना', 'फ़टकलंड गिरधारी, भैस-चांसलर, भंगाचार्य, अस्सी के पिस्सू (तन्नी गुरु), बकलंड, भंडभांडू, भटकटैया, किडी कान्वेण्ट, ट्रिपुल- सिंह, गंडऊ-गदर (बुद्धिजीवियो की तथाकथित गोष्ठियां), गदरहा, पोएट लारिएट आफ़ अस्सी, लौंडिएट (गया सिह का संशोधन), बारबर बाबा, वृषभोत्सर्ग कर्मकांड, अचारिन (आचार्य की पत्नी), चवन्नी गुरु, 'हो-हो-हाँ-हाँ' वाली हंसी, बहरी अलंग आदि-आदि।[35] इनके अतिरिक्त उपन्यास में प्रयुक्त तमाम-तमाम गालियां भी व्यंग्यात्मक 'टोन' में ही आयी है।

(च) राजनीतिक शब्दावली: उपन्यास में समकालीन राजनीति की चर्चा भी है। बल्कि अस्सी के गदरहे जो बहसें करते है, उनमें राजनीति पर ही बहसें ज्यादा होती है। उपन्यास मे एक-दो स्थानों पर साल और तारीख तक दिए गए है। आडवाणी की रथयात्रा के बाद के सिनेरियो को भी लेखकने अनदेखा नहीं किया है। मंडल पंच, कांसीराम, वि पी सिंह, मायावती, अटल विहारी, सोनिया आदि के उल्लेख भी मिलते है। बाबरी-मस्जिद वाली घटना और उसके बाद की स्थितियो का जायजा भी लेखक ने लिया है, अत: उपन्यास मे राजनीतिक शब्दावली का आना जायज ही समझा जायेगा—

'जोर्ज बुश, मार्गारेटा थेचर, गोर्बाचोव, भाकपा (भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी), भाजपा (भारतीय जनता पार्टी), कांग्रेस, जद (जनतादल), बिपिया (वी. पी. सिंह), मंडल कमीशन, वी. पी. सिंह जिन्दाबाद, देवीलाल मुर्दाबाद, पी. एम, आदर्श और सिद्धान्त=सोने का गहना, सोशलिस्टवे, अबकी बारी अटल बिहारी, मोहर मारो हाथी पर, सुनील शास्त्री (शास्त्रीजी के सुपुत्र जो बाद में भाजपा में आये), मुलायम, कांसीराम, लोहियावादी, बहुगुणावादी, राजीव ग्लैमर, ललुवा (लालूप्रसाद), मुलैमा (मुलायमसिंह), सीताराम केसरी, हरिकिशन सुरजीत, ए. बी. वर्द्धन, एक टाँग कबर में और एक पोलिट्क्स में, कोयम्बतुर बम-कांड,

जिसकाखाये उसका गाये, राम लला हम आयेंगे, मस्जिद वहीं बनायेंगे, मंदिर वहीं बनायेंगे, राष्ट्रीय स्वाभिमान और गोसंरक्षण, 6 दिसम्बर अयोध्या-कांड।[36]

(छ) गालीवाचक शब्दावली: हमारे आलोच्य उपन्यासों में से सर्वाधिक गालियों का प्रयोग प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि पूरब, और पूरब में बनारस और बनारस में अस्सी, यहां के लोग गाली न बोले तो ही आश्चर्य। गाली ही उनका चैतन्य-चूर्ण है। गाली उनके लिए आत्माभिव्यक्ति का सर्वोत्तम तरीका है। मेरी एक मौसी मथुरा की है। वह प्राय: एक कहावत सुनाती है;- 'बोलन्त हेला वचनन्त गाली, देखी श्याम मधुपुरी तुम्हारी। मधुपुरी अर्थात मथुरा। वहां के लोग बात-बात में गालियां बोलते है। परंतु यदि इन दो शहरों का तुलनात्मक भाषिक-अध्ययन किया जाए तो गालियों के विषय में बनारस कदाचित इक्कीस ही ठहरेगा। उपन्यास में एक स्थान पर कहा गया है-

"धक्के देना, धक्के खाना, जलील करना और जलील होना, गालियां देना और गालियां पाना औघड़ संस्कृति है। अस्सी की नागरिकता के मौलिक अधिकार और कर्तव्य। इनके जनक सन्त कबीर रहे है और संस्थापक औघड़ कीनाराम। चन्दौली के एक गांव से नगर आए एक आप्रवासी सन्त। गालियां इस संस्कृति की राष्ट्रभाषा है जिसमें प्यार और आशीर्वाद का लेन-देन होता है।[37]

तन्नी गुरु, डॉ. गया सिंह, रामजी राय, ट्रिपुल सिंह आदि ऐसे-ऐसे गाली दिग्गज-चरित्र हैं, तो उपन्यास में लेखक गालियों से परहेज कैसे कर सकता है? यहां कुछ गालियों को छांटकर रखा गया है—'चूतिया,... सड़ीके, एल के डी(लौडे के दक्खिन), झाट में आग लगना, हमारी ही 'उसमें' डंडा करोगे, अपनी मैया... दाए, छिनरी के, 'बच्चा बच्चा राम का... ड न कवनो काम का; फ़टकलंड गिरधारी, मां...दाए दुनिया, हम बजाएं हरमुनिया, बकलंड अहिर, लंड़बहर लेखक, लंडचटई मत करो, 'शिथिलौ च सुबद्धौ च'(सांड का अंडकोश), लौडिएट(लोरिएट की तुक में डॉ. गया सिंह द्वारा बनाया शब्द), महिला है तो कपार पर बैठकर मूतेगी? आदि-आदि।[38]

यहां यह बात ध्यान में रहें कि ये गालियां अनेक पृष्ठों पर, अनेक बार आयी है, पर हमने किसी एक पृष्ठ की गाली को सूचीबद्ध किया है। इन गालियों को लेकर

प्रस्तुत उपन्यास पर अश्लीलता, फूहड़पन आदि के आरोप लगाए गए हैं, पर इस प्रकार के आरोप तो 'आधा गांव', 'मुर्दाघर' आदि कई उपन्यासों और रचनाओं पर लगाया जा सकता है। वस्तुत: अश्लीलता का मुद्दा लेखक की नीयत से जुड़ा हुआ है। लाख हंसी-मजाक और व्यंग्य के बावजूद मैं प्रस्तुत उपन्यास को 'गहरे विषाद में डूबी हुई' दर्दकथा' मानती हूं। 'कौन ठगवा नगरिया लूटल हो ' यही लेखक का दर्द है। हंसी, सच्ची हंसी, खनकती हुई लुप्त हो रही है, मानवता पर बजारवाद हावी हो रहा है, इन्सानियत का जनाजा उठने को है, यह ब्राह्मण-धर्म और क्षत्रिय-धर्म पर वैश्य-धर्म के हावी होने का दर्द है। हमने तो यही सब महसूस किया है।

(ज) मुहावरे: मुहावरे सम्पूर्ण वाक्य नहीं होते। वे वाक्यांश होते है, अंत: मुहावरों की चर्चा पूर्ववर्ती अध्यायों में भी हमने 'शब्द-विचार' के अंतर्गत की है और यहाँ भी वही उपक्रम है। कुछेक मुहावर सूचीबद्ध किए गए हैं —

(1) टस से मस न होना, (2) एक ही गांड से हगना (एकमत होना), (3) शब्दकोश में व्याकरण नाम की चीज का न होना, (4) किसी की बधिया बैठा देना, (5)मुह्ल्ले के 'डीह' होना, (6) मेंढिया पहलवान से कम न समझना, (7) थर थर कांपना, (8) दुरदुराना, (9) दिल्ली जाना (सत्ता में आना), (10) डंडा करना (तकलीफ़ पहुंचाना), (11) गाड में खूटा पडना, (12) क़िसीकी कुटम्मस करना, (13) गज़लें पेल देना, (14) कबाड़ा करना या करवाना, (15) छाती पर पत्थर रख़ना, (16) अस्सी के पिस्सू होना, (17) पंवारा गाना (दुख़ड़े सुनाना), (18) चेहरे पर ख़िलान होना, (19) घिंसी-पिटी बात करना, (20) किसीके मुंह पर सरस्वती बोलना (बनारसी बोली में गालियों की बौछार करना), (21) ऐरागैरा नत्यू ख़ैरा, (22) गुल खिलाना, (23) चूतिया बनना (मूर्ख़ बनना), (24) इंटरनेट भिडाए रखना (इंटरनेट पर सर्च करना), (25) मक्खी की तई निकाल फ़ेंकना, (26) एक टाँग कबर में होना, (27) गांड काटकर पीपल पर टाँग देना, (28) पादने तक की फ़ुर्सत न होना, (29) गंडऊ गदर मचाना (बेकार की बातें करना), (30) दिन भर आफ़िस में मराना (बेकार की बातें करना), (30) विद्वता पादना, (32) लंडचटई करना (दिमाग ख़पाना), (33) जमीनी नेता होना (ग्रास-रूट लेवल

का नेता), (34) पादने का सहूर न होना, (35) हाय-तोबा मचाना, (37) घर में भूंजी भाँग तक का न होना, (38) समाज का कचडा (फ़ालतू लोग), (39) किचाइन करना (मेहनत-मशक्कत करना), (40) लंगोट का जिम्मेदार होना (अपने ब्रह्मचर्य का ध्यान रखना), (41) हराम की कमाई (बिना मेहनत की कमाई), (42) सुबहे बनारस (बनारस की सुबह बढ़िया मानी जाती है), (43) किसीका जहन्नुम में जाना, (44) ठंडे दिमाग से काम लेना, (45) अरबों-ख़्रबों का वारा-न्यारा, (46) रकम ख़ाना, (47) किसीसे सौदा करना, (48) किसीकी जिन्दगी हंसी-ख़ेल होना (मामूली होना), (49) किसी वस्तु का सिरदर्द होते जाना, (50) किसीके तीन-तेरह में न होना, (51) तिल भर जगह का न होना, (52) चतुर भईलैं कऊवा (चतुर व्यक्ति को कौवा समझना या चतुरों का कौवा हो जाना)[39]

(झ) विविध भाषाओं की शब्दावली: यह पहले भी निर्दिष्ट किया जा चुका है कि हमारी वर्तमान भाषा में कई अन्य भाषाओं के शब्द आकर मिल गए हैं। प्रतिवर्ष भाषा में कुछ शब्दों की अभिवृद्धि होती रहती है। पहले मुसलमानी शासन रहा। अत: भाषा में अरबी-फ़ारसी-तुर्की आदि के शब्दों का समावेश हुआ। उसके बाद पोर्टुगिज़, फ्रेन्च, अंग्रेज इत्यादि आये। अंग्रेजों ने तो हमारे देश पर गालिबन 250 वर्ष तक राज्य भी किया और तब राजभाषा अग्रेजी रही। अंत: अग्रेजी के कई शब्द हमारी भाषा मे समाविष्ट हो गये है। दूसरे अग्रेजी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की भाषा भी रही है, कमज़कम उन देशों में जो अंग्रेजो के उपनिवेश रहे हैं, अंत: हमारी दैनंदिन भाषा में अंग्रेजी शब्दों का पाया जाना अत्यन्त स्वाभाविक है कुछ अंग्रेजी शब्दों ने तो हमारी भाषा के संस्कार भी ग्रहण कर लिए हैं, जैसे—लालटेन (लेण्टर्न), रपट (रिपोर्ट), गुस्ट्न (गुडज़ ट्रेन), इजनेर (एंजिनियर), डाक साहब (डाक्टर साहब), अण्डरवेल (अण्डरवेयर), आदि-आदि।40 अरबी-फ़ारसी के शब्दों को हमने अध्ययन की सुविधा हेतु 'उर्दू' के अंतर्गत रखा है। अब ऐसी कुछेक भाषाओं की शब्दावली यहां प्रस्तुत करने एका हमारा प्रयास रहेगा—

(1) संस्कृत शब्द: तमाम आधुनिक आर्य-भाषाओं का जन्म संस्कृत से हुआ है। आज भी हमारी भाषा में अनेक संस्कृत शब्द बिना किसी परिवर्तन क

व्यवहृत होते है, जैसे--- सूर्य, चन्द्र, दिवस, प्रकाश, पृथ्वी, भूमि, नदी, रवि, सोम, मंगल, बुध, पुरूष, स्त्री, शिशु आदि-आदि । प्रस्तुत उपन्यास का भौगोलिक परिवेश तो बनारस है, और बनारस तो हमारे सारे शास्त्रों के अध्ययन और संस्कृत के अध्ययन का केन्द्र रहा है। अंत: उपन्यास में संस्कृत शब्दों का आना स्वाभाविक --

तस्कर, प्रदूषण, अंतर्राष्ट्रीय, राजनीति, रामकथा, भागवतकथा, यज्ञ, नवाहन पारायण, जम्बूद्वीप, सांस्कृतिक, संकटमोचन, ज्योतिषाचार्य, वेदाचार्य, भिषगाचार्य, व्याकरणाचार्य, रुद्राक्ष, महिषासुरमर्दिनी, कार्षापर्ण, योगाश्रम, अज्ञातवास, स्वयंसेवक,शिथिलौ च सुबद्धौ च, द्रोणाचार्य, पितृशोक, सत्यानाश, प्रतिभा, प्रजाति, एकलव्य, व्यवस्था, कार्यक्रम, त्रेता, कलिकाल, ब्रह्मदत्त, लोकतंत्र, संन्यासी, कंदरा, अभिभाषण, दुर्घटना, प्राकृतिक, विधवा, काव्य-गोष्ठी, रामजन्मभूमि, शिलापूजन, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, राष्ट्रभाषा, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, निम्नतम, सिद्वान्त, दुर्द्धर्ष निशाचर, हरिद्वार, बोधिवृक्ष, अष्टाध्यायी, भाष्य, भाषाविद आदि-आदि।[41]

(2) उर्दू शब्द: संस्कृत की भांति उर्दू के भी कई शब्द हमारी भाषा में आ चुके हैं, जैसे—रोज़, दर्द, आवारा, दवाखाना, शराब, औरत, बीबी, बुढ़ापा, मुसलमान, नमाज़, हकीम, फ़ौजदार आदि-आदि। प्रस्तुत उपन्यास में भी ऐसे कई शब्द आये है, फ़िर भी कुछेक को रखाकित किया जा रहा है --

आदमी, बापजान, आवारगी, मुकाबिल, अख़बार, मुकदमेबाज़, मस्जिद, फ़रागत, सूबेदार, जिन्दाबाद, मुर्दाबाद, फ़रार, नज़रबंदी, चापलूस, तरबली, ग़ज़ल, हड्डी, प्याज, कुर्ता-पाजामा, मुस्कान, अन्दाज़, मयस्सर, बुनियादी तौर, परेशान, अड्डा, चादर, बेरोजगार, लौंडियाबाजी, बेमुरव्वत, हेकड़बाज़, फ़कीर, नमाज़, अज़ान, मालिश, जमींदार, तालुक्केदार, खुशहाल, मस्ताना, परवाना, दीवाना, मैखाना, मर्दाना, मुमकिन, लहंगा, जिम्मेवार, हराम, सुबहे बनारस (यहां बनारस शब्द तो 'तदभव शब्द है, वाराणसी = बनारस, पर 'सुबहे' के कारण उसे यहां रखा है। सुबहे=सबह-ए= बनारस की सुबह), जहन्नुम, इजारेदार, मुस्तैद, लापरवाह, गप्पबाज (यहां भी गप्प संस्कृत के 'गल्प' से व्यत्पन्न है, पर 'बाज़'

प्रत्यय उर्दू का है), बाज़ार, दरवाजा, मुर्दा चेहरा, सौदा, दोगलापन, सिरदर्द, ओहदा, तकलीफ़, परेशानी, हैसियत, नाराज, लुंगी, खामखाह, तीमारदार, जबर्दस्ती, जिन्दादिली, जिद्दी, बेफ़िकर, खुशगवार, चश्मदीद गवाह।[42]

(3) अंग्रेजी शब्द: अंग्रेजी के भी काफ़ी शब्द उपन्यास में आये हैं। यहां उनको सूचीबद्ध किया गया है—

यूनिफ़ोर्म, बायाडेटा, पैंट-शर्ट, जीन्स, हाई-फ़ाई, पी. ए. सी., एस. एस. पी., आइडेंटिटी कार्ड, सरनेम, अटेंशन, डायमंड हार्बर, सिनेमा, सिगरेट, फ़ाइन-आर्ट्स, राजेश ब्रदर्स, टेपरिकोर्डर, वीडियो-केमेरा, पी. एम., सी. एम., डी. एम., पी-एच डी, माइक टायसन, फ़ेनामेना, चर्च गेट, कनाट सर्कल, लेक्चरर, ओक्सीजन, थीसिस, सोशलिस्ट, कोफ़ी हाउस, वोट, कलेक्शन, क्रिस्टिना, एलायन्स, टी. एम. सी., डी. एम. के. प्रोफ़ेसर, सिम्पोजियम, सेमिनार, टेम्पो, स्वीडेन, रिसर्च, मास्टर की, कलेक्टर, कोमरेड, आई. पी. एफ़., मोडल, स्पीडब्रेकर, स्टे, स्टेफ्री एग्जोई, हाउसबोट, इंजीनियर, फ़िलोसोफ़ी, लारिएट, इंटेलिजेंस, कैथरीन, सैलून, जनरल स्टोर, शेविंग क्रीम, स्टूडेंट वीसा, इंडियन फ़िलोसोफ़ी, ग्लोबलाइजेशन, लिबरलाइजेशन, मल्टीनेशनलाइजेशन, इंडियन डांस, व्हाइट हाउस, ग्लोब, डिमोंस्ट्रेशन, सी. आई. ए. एजेंट, हेरोइन, ब्राउन शुगर, रेड लाइट एरिया, सूमो, सैन्ट्री, मैटीज़ मार्फ़ीन, वियाग्रा, पिनाग्रा, नियाग्रा, पेंइंग गेस्ट, ग्रेहाम स्टैंस, होलेण्ड, फ्रास, हगेरी, आस्ट्रिया, स्विट्जर्लेण्ड, स्वीडेन, आस्ट्रेलिया, कोरिया, जापान क्लार्क्स, डी पेरिस, कैलकुलेटर, ट्रांजिस्टर, बोल्ड एण्ड ब्यूटीफ़ूल, क्लीन शेव्ड, वंडरफुल, मादलेन, संस्कृत इन सिक्स मन्थ्स, गैंगेज़ लाज, डायेना, आर्केस्ट्रा, थिंक टैन्क, प्रेस, न्यूयोर्क, लंदन, पेरिस, टोकियो, मैरिन ड्राइव, स्टेनो, प्राइवेट सेक्रेटरी, रिसेप्शनिस्ट, प्रोबेशन, वेलकम, आई. डी. बी. आई., यू. टी. आई., आई. सी. आई. सी. आई., आफ़ सीजन सेल, एन. एस. सी., टी. वी. चैनल , डेकोरेटर, हैप्पी न्यू ईयर, प्रिपेयरेशन।[43]

(4) अंग्रेजी से व्युत्पन्न शब्द: उपन्यास में कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जिन्होंने हमारी भाषा के संस्कारों को अंगीकृत कर लिया है या उसके कुछ आसपास का रूप धारण कर लिया है, जैसे—

गिलास(ग्लास), इनभर्सिटी (यूनिवर्सिटी), सोशलिस्टवे, भैस चांसलर (वाइस चांसेलर), गैर-लाइसेंसी, बम-कांड, ट्रिपुल सिंह (ट्रिपल सिंह -- शिवशंकर सिंह), किडी कोन्वेण्ट (किड्ज़ कोन्वेण्ट), इस्टूडेंटो (स्टूडेण्ट्स), अंगरेजिन,कमेटी (कमिटी), अफ़्सर (ओफ़िसर), परमामेंटा (परमेनेण्ट), कम्यूनिस्टवा, आइजेशन (ग्लोबलाइजेशन के वज़न पर), आस्ट्रेलियाई (आस्ट्रेलियन), ब्यूटी पार्लरें।[44]

वाक्य-विचार:

'शब्द' के बाद भाषा की इकाइयों में 'वाक्य' आता है। एक अथवा एकाधिक शब्दों से वाक्य का निर्माण होता है। आदेशात्मक या आज्ञावाचक वाक्य एक शब्द का भी सो सकता है, जैसे--- चलो, बैठो, जाओ आदि-आदि। इस शीर्षक के अंतर्गत हम आलोच्य उपन्यास में आये हुए कुछ वाक्यों पर विचार करेंगे।

(1) **व्यंग्यात्मक वाक्य:** 'काशी का अस्सी' व्यंग्य उपन्यास है, अंत: उसमें कई ऐस वाक्य आये है जिनमें व्यंग्य की अभिव्यंजना हुई है। यहां पर ऐसे कुछ वाक्यों को उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है-

(1) अस्सी और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई का रिश्ता है। (2) गुरु' यहां की नागरिकता का सरनेम है। (3) जो पठितव्यम् तो मरितव्यम्, न पठितव्यस् तो मरितव्यस, फ़िर दाँत कटाकट क्यो करितव्यम्। (4) इसके (कवि-पालन-केन्द्र) मानद इन्चार्ज थे समीक्षक नामवरसिंह और पर्यवेक्षक थे त्रिलोचन। (शुरू मे अस्सी पर प्रवासियों की एक ही नस्ल थी- लेखकों-कवियों की—यह उन दिनों की बात है।) (5) सच्ची कहें तो नमवर-धूमिल के बाद अस्सी का साहित्य-फ़ाहित्य गया एल के डी (उसका अर्थ पहले दिया गया है। देखिए गाली) (6) अनाड़ी लोग उन्हें (डॉ. गया सिंह को) कानपुर के 'धरतीपकड़' घोड़ावाले की टक्कर का व्यक्तित्व मानते है। (7) जिस राग को सुनकर झांट में आग लग जाए वह आग राग। (8) जिस 'दिव्य निबटान' के लिए बनारस सारे संसार में प्रसिद्ध, उसके लिए भी 'चवन्नी',अठन्नी' देनी पड़े, इससे बुरी बात क्या हो सकती है? (9) हरिद्वार पांडे, भाषण-कला के बैजू-बावरा थे। (10) यह भी कहते हैं कि नगरसेठ ने कभी अखबारों के जरिए ऐलान करवाया था कि जो कोई

रामजी राय से एक भी ऐसा वाक्य बुलवा लें जिसमें गाली न हो, उसे सवा लाख रुपये का इनाम और आज भी वह इनाम अपनी जगह है। (11) रामवचन पिछले दस सालों से पचास वर्ष के थे और हरिद्वार पन्द्रह वर्षों से तीस साल के। (12) भ्रष्टाचार लोकतंत्र के लिए ओक्सीजन है, है कोई ऐसा राष्ट्र जहां लोकतंत्र हो पौर भ्रष्टाचार न हो? (13) मेरी थीसिस दूसरी है गुरु, जो आदमी बढ़ियायी नदी में मुर्दा पर बैठकर आधी रात को सांप पकड़कर अपनी औरत को मिलने के लिए जा सकता है, वह डाकू भले ही हो जाए, साधु नहीं हो सकता। (14) ग्राहक हिन्दू होने लगे और आलू, भिंडी, करेला, टमाटर कोंहड़ा (मुहल्ले की सबसे प्यारी सब्जी-पूड़ी-प्रेम के कारण) गोभी मुसलमान। (हिन्दू-मुसलमान में बढती दरार) (15) सबके सब जारज और यही... सड़ी के वर्ण-व्यवस्था देते हैं। (16) गंडऊ-गदर एक ऐसी गांछ है इस बगीचे की जो पिछले दस पन्द्रह सालों से फ़ल-फ़ूल रही है। (17) महाराज, पिछले जन्म में मैं भी महन्थ था, देखिए इस जन्म में कुक्कुर हूं, आप इसे महन्थ बना देंगे तो अगले जन्म में वह भी कुत्ता होगा। (18) जो मुसलमान नहीं थे या कम थे या जिन्भें अपने मुसलमान होने का बोध नहीं था, वे मुसलमान हो गए रातोंरात (6 दिसम्बर की देन) (19) बारबर बाबा विदेशियों को 'योगा' सिखाते है और उनकी पत्नी कैथरीन शर्मा किताबें लिखती है। (20) वे (तन्नी गुरु) अपने लंगोट के जिम्मेवार है, दूसरो के लहंगों के नहीं। (21) इन्हीं बाभनो ने सभी क्षत्रियों के हाथो में धनुष-बाण थमा दिया कि जाओ बेटा युद्ध करो, तुम्हारे लिए बेटे पैदा करना हमारा काम है। (22) और जैसे आप अपनी मर्जी के मालिक नहीं, वैसे ही हम भी अपनी मर्जी के मालिक नहीं, हमारे ऊपर भी लोग है—जापान में, जर्मनी में, अमेरिका में। (23) बाजार वह है जो तुम्हारे दरवाजे पर है, पोर्टिको में है, ड्राइंग रूम में है, बेड-रूम में है, आलमारी में है, किचेन में है, टायलेट में है, और वही क्यों तुम्हारे बदन पर है, सिर के बालों से लेकर पैरों के नाखून तक है। (24) यह किसी भी सनसनीखेज खबर से कम नहीं कि जम्बूद्वीप में एक ऐसी भी जगह है जहां हंसी बची रह गयी है। (25) जो कल तक नगर का सबसे बड़ा अपराधी था, वह नगर का हीं नहीं, मुल्क का सबसे सम्मानित नागरिक हो गया था।[45]

(2) सूत्रात्मक वाक्य: सूत्रात्मक वाक्य उनको कहते है, जहां कोई बात, कोई तथ्य, कोई सत्य, किसी एक वाक्य में सिमटकर आ जाता है। ऐसे वाक्य प्राय: परिभाषात्मक होते है। कई बार ऐसे वाक्य प्रतीकात्मक-से लगते है। पहले कोई बात याद रखने के लिए सूत्र (धागे) में गांठ लगायी जाती थी, ताकि उसका स्मरण रहे।[46] सूत्र उसे कहते हैं। यहां पर आलोच्य उपन्यास से इस प्रकार के कुछ सूत्रात्मक वाक्यों को रेखांकित किया गया है--

(1) जब सौ रचनाकार मरते हैं तब एक आलोचक पैदा होता है। (डा गया सिंह उवाच) (2) सिद्वान्त सोने का गहना है, रोज़-रोज़ पहनने की चीज नहीं।(हरिद्वार पांडे उवाच) (3) भाई, भतीजा, भानजा, भांड़, भूत, भुंईहार ए छहों भकार से सदा रहो हुसियार।(रामजी राय के संदर्भ से फूटा सूत्र-वाक्य) (4) जानता हूं मास्टर की सुबह और रंडी की शाम नहीं खराब करनी चाहिए(यह उनके धंधे का समय होता है), (5) बाभनों में तिवारी, ऊँट की सवारी, मयभा महतारी, हैजा की बीमारी, लालाओं में पटवारी, कोहड़ा की तरकारी... और इसी कहावत में एक और जोड़ लो—अमरीकन नारी; इनका कोई भरोसा नहीं। (6) द्वीपों में द्वीप जम्बूद्वीप। (7) ड्रायवर की जिन्दगी हंसी और खेल है, मौत से बचा तो सेन्ट्रल जेल है। (8) शायर बोला कि अस्सी से अस्सी चला गया, अब यहां खडे है, बैठे है, पान खा रहे है, चाय पी रहे है, गा-बजा रहे है, वह अस्सी नहीं तुलसी नगर है। (9) अस्सी अष्टाध्यायी है और बनारस उसका भाष्य। (भारतीय भूगोल की एक भयानक भूल) (10) जो मजा बनारस में; न पेरिस में, न फ़ारस में। (अस्सी वालों का इश्तहार) आदि-आदि।[47]

(3) राजनीतिक वाक्य: 'काशी का अस्सी' उपन्यास में आजादी के बाद की राजनीतिक स्थितियों का जायजा लिया गया है, पर मोटे तौर पर उसमें आठवें-नवें दशक की राजनीतिक उठा-पटक का यथार्थ चित्रण हुआ है। एक अच्छा उपन्यास अपने समय का दस्तावेज और इतिहास होता है। एक तरफ़ प्रेमचंद के उपन्यास ले लो और दूसरी तरफ़ तत्कालीन समय के इतिहास को, तो इतिहास की उपस्थिति आपको मिलेगी। डॉ. कांतिमोहन का यह कथन सौ फ़ी सदी सही है कि प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में उनके समय का इतिहास

बोलता है।[48] कार्ल माक्र्स ने बाल्जाक के उपन्यासों के संदर्भ में कहा था कि फ्रान्स के उस समय के इतिहास को समझने में उनके उपन्यास जितने सहायक हो सकते हैं उतने वहां के इतिहासकार, विद्वान, शिक्षाविद्व और दूसरे नहीं हो सकते।[49] ठीक यही बात हम प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में कह सकते है कि यह उक्त दो दशकों की कथा बहुत ही सटीक व सार्थक ढंग से उठाते हैं। फ़लत: उनके उपन्यास में कुछ ऐसे कथनों का आना स्वाभाविक ही माना जायेगा जिनसे तत्कालीन राजनीति को समझने में सहायता मिलती है। इन राजनीति से प्रेरित वाक्यों को हम दो कोटियों में विभक्त करते हैं— (क) पात्रों के कथन या विश्लेषण में आये हुए वाक्य और (ख) नारों के रूप में उछले हुए वाक्य।

(क) पात्रों के कथन या विश्लेषण के रूप में आये हुए वाक्य:

इस कोटि में आनेवाले वाक्य कुछ इस प्रकार हैं—

(1) आजादी के बाद देश में जगह-जगह 'केन्द्र' खुलने शुरु हो गए थे— 'मुर्गी-पालन-केन्द्र', 'मत्स्य-पालन-केन्द्र', 'सूअर पालन केन्द्र, 'मगर-घड़ियाल-पालन केन्द्र', 'तो इन कवियों-लेखकों ने भी अपना एक केन्द्र खोल लिया—केदार चायवाले की दुकान में—'कवि-पालन केन्द्र'। (2) 'भारतीय संस्कृति' के भाजपाई चरवाहों ने अस्सी परंपरा के रखवालों से कहा कि होली का यह कवि-सम्मेलन नहीं होगा, क्योंकि वह अश्लील, गंदा और फूहड है। (3) जब यह बिपिया (वी पी सिंह) हर जगह से दुरदुराया और लतियाया जा रहा था तो यही अस्सी-भदैनी है जिसने उसका तिलक किया और कहा- राजर्षि। (4) पी. एम. मंडल आयोग में फ़ंस गया, सी. एम. बाबरी मस्जिद में और डी. एम. दोनों की व्यवस्था में – देश... सड़ी के जहां-का-तहां है। (5) राजनीति बेरोजगारों के लिए रोजगार कार्यालय है, इम्प्लायमेण्ट ब्यूरो। (6) जो आदमी सत्यनारायण की कथा नहीं सुन सकता, वह देशका प्रधान-मंत्री कैसे हो सकता है? (7) त्रेता के जमाने से उड़ते हुए इस कलिकाल में दोनों (कौवा और उल्लू) दिल्ली पहुंच रहे है।(तुलनीय- हर शाख पे उल्लू बैठा है, अंजामे गुलिश्तां क्या होगा?) (8) किसी की सभा देख लिजिए तो दरी-चौकी बिछानेवालों और तम्बू-कनातवालों को निकाल दीजिए तो भीड़ वही रहती है जो कारों-जीप में नेताजी के साथ चल्ती है, हर जगह वही चेहरे। (जबकि

नेहरू, लोहिया, जयप्रकाश नारायण के लिए भीड़ नहीं जुटानी पड़ती थी, भीड़ अपने आप आती थी।) (9) जब सोलह पार्टियों को लेकर चलना हो गा तो शिथिल तो होगा ही; लेकिन सुबद्ध है, गिरेगा नहीं, करते रहो इन्तजार। ('शिथिलौ च सुबद्धौ च' वाली पंचतंत्र की कहानी के संदर्भ में जो नेताओं के बारे में है कि कहानी के सियार-सियारिन की भांति वे भी सरकार गिरने की प्रतीक्षा में है!) (10) उसके एजेंडा पर था राष्ट्रीय स्वाभिमान और गोरक्षण। देश... सड़ी का रसातल में जाता है तो जाए, ये अयोध्या और पोखरन जाएंगे। (11) यह बताइए कि कभी कौरा खाने वालों ने शासन किया है?(कौरा खाने वाले याने बहनजियों से टिफ़िन मंगवाने वाले भाजपा के नेता लोग) (12) मस्जिद खड़ी करने में तो समय लगता है; यहां तो एक ईट या पत्थर फ़ेंका, गेरु या सेनूर पोता, फूल-पत्ती चढाया और माथा टेक दिया – 'जै बजरंगबली।' (13) अयोध्या का फ़ायदा यह हुआ कि चन्दौली से कछवा के बीच जी. टी. रोड के किनारे-किनारे सैकडों एकड़ जमीन कब्जिया लिया तुम लोगों ने सिनुर पोत-पोतकर।(वीरेन्द्र गैर-भाजपाई और पांडे भाजपिये) (14) जिन्हें ठीक से गांड धोने का सहूर नहीं, वे अपनी और दूसरों की हैसियत देखने लगे है।(बाजारवाद का हमला और बाजारवाद गलत राजनीति का परिणाम। (15) लोग पसंद करते थे कि आप या मा या भाई या बेटा या बी बी— जो बीमार हो, रोगी हो, जिसको मरना हो--- अस्पताल जाए, खामखाह तंग न करें पूरे घर को।(व्यक्ति का, और अस्सी का भी, असवेदनशील होते जाना— बाजारवाद और राजनीति के परिणाम) आद-आदि।[50]

(ख) नारों के रूप में उछले हुए राजनीतिक वाक्य: ये वाक्य रजनीतिक नाराबाजी के उदाहरण हैं। उनमें से कुछेक यहां द्रष्टव्य है—

"(1) वी. पी. सिंह जिन्दाबाद। (2) देवीलाल मुर्दा बाद। (3) वी. पी. सिंह मुर्दाबाद! (मंडल आयोग की घोषणा के बाद) (4) ठाकुर बुद्धौ यादव बल! झंडू हो गया जनता दल! (5) रामलला हम आयेंगे, मंदिर वहीं बनायेंगे! (6) रामलला हम आयेंगे मस्जिद वहीं बनायेंगे (हंसी-मजाक में राय साहब का कथन) (7) बच्चा बच्चा राम का, भाजपा के काम का। (8) रामलला तुम मत घबराना, हम तुम्हारे साथ हैं। (9) बच्चा बच्चा राम का लंड न कवनो काम का! (नारा नं 7 के जवाब

में) (10) पी लो पाउच, भर लो पेट, फ़िर न मिलेंगे जवाहर सेठ! (समाजवादी पार्टी के प्रत्याशी जवाहर जायसवाल, यू पी में दारु के सबसे बडे ठेकेदार। यहां 'पाउच' से मतलब है, शराब का पाउच। अब शराब प्लास्टिक के पाउच में भी मिलती है। गुजरात में उसे 'पोटली' कहते है और पोटली पीनेवाले को 'पोटलीबाज़'।) (11) पाउच नहीं दूध चाहिए, बनिया नहीं अहिर चाहिए। (नारा नं-10 का तोड़) (12) अबकी बारी अटल बिहारी। (13) पत्थर रखो छाती पर, मुहर मारो हाथी पर! (बसपा के समर्थन में बाभनों का नारा) (14) कांख में भाजपा, अंगूठे पर बसपा। (15) काम करो बनिये का मजा ले लो दुनियेका। (16) बनारस में बेनिया, दिल्ली में सोनिया। (17) जै बजरंगबली, जै श्रीराम! (18) वाराणसी ईज़ डाइंग! (कैथरीन का नारा) आदि-आदि।"[51]

(4) अंग्रेजी के वाक्य: 'मुझे चाँद चाहिए' की भांति यहां ढेर सारे अंग्रेजी वाक्य तो नहीं मिलते, पर बनारस में आने वाले विदेशियों के कारण कही-कहीं अंग्रेजी वाक्य आ गए हैं, और वे वाक्य भी काफ़ी 'सिंपल' प्रकार के हैं, कम्पाउण्ड वाक्य नहीं है। यहां पर एक और बात का खुलासा भी लेखक द्वारा हुआ है कि विदेशियों का यह टिड्डी-दल यहां क्यों अड्डा जमाए हुए बैठा है? इंडियन कल्चर, इंडियन फ़िलोसोफ़ी आदि तो बाहरी बातें है। असल में ये 'मजबूरी का नाम महात्मा गाधी' वाली कहावत को चरितार्थ करने वाले लोग है। उन्हें अपने देश में 'बेकारी-भत्ता' के रुप में जो एक हजार डालर प्रति मास मिलता है, उसमें उनका गुजर-बसर वहां तो होने से रहा, अंत: ये यहां चले आते है। वहां उनकी गिनती समाज के कचरे में होती है—कामके न काज के दुश्मन अनाज के। नतीज़तन वे यहां आते हैं और यहां के लोग उनको सम्मान से देखते हैं,[52] क्योंकि विदेशियों की टट्टी चाट्ना हमारी पुरानी आदत है। बहरहाल यहां कुछ अंग्रेजी वाक्य उदारहरण—स्वरुप द्रष्टव्य है—(1) ही इज़ पोएट लोरिएट आफ़ अस्सी। (2) वाराणसी इज डाइंग। (3) ही इज रियल रिसी-मुनी, लाइक वसिष्ठा, लाइक विश्वामित्रा। (4) यू सी, हाई क्लास ज्योतिषाचार्य। (5) टीचिंक संस्कृत इन सिक्स मन्थ्स! आदि-आदि।[53]

(5) संस्कृत के वाक्य: अंग्रेजी की भांति संस्कृत के भी वाक्य कहीं-कहीं मिल जाते हैं। यथा—

(1) शिथिलौ च सुबद्धौ च। (2) ॐ विष्णोर्विष्णवो नम: (3) ॐ नम: शिवाय। (4) कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरत खण्दे। (5) भारतवर्षे आर्यावर्तान्तर्तते काशीपुण्यक्षेत्रे केदारखंडे निकटे विराजते जाह्नवी तटे मासानाम मासे अमुक वासरे अमुक तिथो अमुक गोत्रौ अमुक नाम वर्माहम सकल्पं करिष्या। (संकल्प कराने की विधि)।[54]

(6) कहावतें:

'काशी का अस्सी' एक व्यंग्यात्मक राजनीतिक उपन्यास है, अतः उसमें आयी हुई कहावतें भी प्राय: उसी प्रकार की हैं। पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि कहावत पूरा वाक्य हैं। कबीर-तुलसी आदि कवियों के दोहों में पायी जानेवाली कुछेक पक्तियों ने भी कहावत का रूप धारण कर लिया है, जैसे—

"करता था सो क्योंकिया, अब करि क्यों पछताय।
बोया पेड़ बबूल का आम कहांसे खाय ॥"[55]

यहां पर 'बोया पेड़ बबूल का आम कहां से खाय', दोहे की दूसरी पूरी-की-पूरी पंक्ति ने अब कहावत का रूप ले लिया है। आजकल कुछ कवि कहावतों का प्रयोग दोहो मे कर रहे है। यथा—

"राजनीति चलचित्र में चली बेटो की बात।
भोजन है ननिहाल में और परोसे मात ॥"[56]

बहरहाल हमारा उपक्रम आलोच्य उपन्यास से कुछ कहावतों को उदाहरण-स्वरुप प्रस्तुत करने का है—

(1) आन का आटा, आन का घी, भोग लगावै बाबाजी! (दूसरों के माल पर गुलछरें उड़ाना) (2) माले मुफ़्त दिले बेरहम। (मुफ़्त का माल उड़ाने में रहम काहे का?) (3) परलै राम कुकुर के पाले, खींच-खींच ले के गइ खाले! (राम कुक्कुरों के पाले पड़ेंगे तो यही हाल होगा।) (4) पुरवा बयार और रांड का रोना अशुभ होता है। (5) काम करो बनिये का मजा ल्यौ दुनिये का। (6) जहां गई डाढ़ो रानी, वहां पड़े पाथर-पानी। (तुलनीय: जहां चरणन पड़े संतन के तहां-तहां बंटाढार!) (7) रांड,

सांड, सीढ़ी, संन्यासी इनसे बचे सो सेवे काशी। (जग-प्रसिद्ध कहावत) (8) का करी रेती, का करी मेला? लाढ़ेराम गुरु, बाकी सब चेला।(9) न उधो का लेना, न माधो का देना। (10) न हर लगे न फ़िटकरी रंगचोखो ही चोखो। (11) द्वीपों में द्वीप जम्बूद्वीप। (12) न किसीकी तीन में न किसीकी तेरह में।(दूसरों की पंचायत में नहीं पडने वाले व्यक्ति के लिए इस कहावत का प्रयोग होता है।)(13) एक अनार दस बीमार। आदि-आदि।[57]

प्रोक्ति-विचार:

वाक्य के बाद की भाषा की इकाई को प्रोक्ति कहते है। अर्थात प्रोक्ति में वाक्य-समूह होता है। एक प्रोक्ति में कई वाक्य होते हैं। परंतु वाक्य-समूह प्रोक्ति तब कहलाता है, जब उन वाक्यों का आपस में कोई सम्बन्ध हो। उदाहरणतया निम्नलिखित वाक्य-समूह देखिए—

यहां से कोलतार की सड़क जा रही है। झूमकू नामक चींटी कहां रहती थी? भाई, पोखर तो पोखर है। ना कहा था, क्यों बोली? ससुर शंकरो मेरा क्या लोगे? कारीगरी तो बढ़िया है। दुनिया जाए झंड के खड्डें में। यहां कुल मिलाकर सात वाक्य है, परंतु इनमें कोई तालमेल नहीं है। ये सब मिलकर कोई बात भी नही कहते। अंत: वाक्य-समूह होते हुए भी उसे प्रोक्ति नहीं कहा जा सकता।

आमतौर पर प्रोक्ति किसी पैरेग्राफ़ को भी कहते है। परंतु ध्यान रहे 'प्रोक्ति' वाक्य-समूह है। एक वाक्य नहीं। क्योकि एक-एक वाक्य के पैरेग्राफ़ भी होते है। हमारे आलोच्य उपन्यास मे ही ऐसे कई उदाहरण मिल सकते है—

अगर उन्हें आप काम नहीं दे सकते, रोजगार नहीं दे सकते, अगर वे किसीसे कुछ मांगते नहीं, छीनते नहीं, तीन तेरह नहींकरते, अगर वे किसीका कुछ बिगाड़ते नहीं और जिस हाल में है उसी हाल में अपनी हंसी हंसते है तो आपको तो निश्चिंत और खुश होना चाहिए।[58]

उपर्युक्त परिच्छेद एक ही वाक्य का है, अंत: परिच्छेद या पैरेग्राफ़ होते हुए उसे हम 'प्रोक्ति' नहीं कह सकते । ऐसे वाक्यों को मेरी दृष्टि से 'महावाक्य' कहना चाहिए।

यहां हमारा उपक्रम आलोच्य उपन्यास 'काशी का अस्सी' की प्रोक्तियों पर विचार करने का है। इस शीर्षक का अध्ययन हम निम्नलिखित चार प्रकार की उक्तियों के अन्तर्गत करना चाहते हैं-(क) व्यंग्योक्तियां, (ख) हास्योक्तियां, (ग) राजनीतिक उक्तियां और (घ) विषादोक्तियां। अब क्रमशः इन पर सोदाहरण चर्चा होगी—

(क) व्यंग्योक्तियां: उपन्यास का रूपबंध व्यंग्यात्मक है। अतः व्यंग्योक्तियों का उसमें होना निहायत जरूरी है। ऐसा कोई 'व्यंग्य-उपन्यास' आपको नहीं मिलेगा जिस में व्यंग्योक्तियों की भरमार न हो। यहां ऐसी कुछ व्यंग्योंक्तियों को रखने का हमारा विचार है

(1) गिरिजेश राय (भाकपा), नारायण मिश्र (भाजपा), अम्बिकासिंह (कभी कांग्रेस कभी जद) तीनों की दोस्ती पिछले तीस सालों से कायम है और आनेवाली कई पीढ़ियों तक इसके बने रहने के आसार है।किसी मकान पर कब्जा दिलाना हो, कब्जा छुड़ाना हो, किसीको फ़ंसाना हो या जमानत करानी हो तीनों में कभी मतभेद नहीं होता! वे उसे मंच के लिए छोड़ रखते है... अस्सी के मुहावरे में अगर तीनों नहीं, तो कम-से-कम दो—एक ही गांड से हगते हैं। (पृ. 12)

(2) वीरेन्द्र श्रीवास्तव और रामवचन पांडे अस्सी के बडे बुजुर्ग नेता हैं। बडे बुजुर्ग' का मतलब घर का ऐसा सदस्य जिसकी सलाह या आदेश को बकवास समझा जाए, जिस पर ध्यान देने की जरुरत न समझी जाए! जैसे अगर चिल्लाए कि 'अरे देखो! बेला खूटा तुडाके भागा जा रहा है, पकड़ो उसे, या 'गैया को नांद से हटाकर नीम की छाह में बाँध दो' तो लड़के-बच्चे ताश खेल रहे हों तो खेलते रहें! यानी, वह जो अपने जीते जी फ़ालतू हो जाए! (पृ-22)

(3) हजार बार कह चुका हूं कि सिद्धान्त सोने का गहना है! रोज़-रोज़ पहनने की चीज नहीं! शादी-ब्याह तीज-त्यौहार में पहन लिया बस! सिद्धान्त की बात साल में एक-आध बार कर ली, कर ली; बाकी अपनी पोलिटिक्स करो। (पृ34)

(4) जब दोनों बाहर निकले तो लालू ने मुलायम से कहा- "बड़स बुड़बक बुझाता है जी! कैसा जाधो है? दुनिया अउर लोग हमको-तुमको 'नेता'

नेता बोलता है, अउर ई कहता है 'नेती' 'नेती'। पेपरों पढ़ता, तबो पता रहता कि हम नेता है नेती नहीं। जदि भैस चांसलर हो जाता तो समझो कि हमरा भी कबाडा करता और मुलुक का भी।"(पृ-43)

(5) छोड़ो ये सब। एक पते की बात सुनो; जानते हो, बुढ़ापे का सबसे बड़ा कष्ट क्या है?' उन्होंने अपनी जांघों की और इशारा किया—एक ऐसी चीज का नीचे निरन्तर लटकते जाना—घुटनों की और, जिसका अब न कोई इस्तेमाल है, न जरुरत, ऐसी फ़ालतू चीज का वज़न ढ़ोना और मरते दम तक ढोते रहना बुढ़ापे का सबसे बढ़ा कष्ट है। (पृ-47) तन्नी गुरु का कथन, बुढ़ापे के संदर्भ में। बुढ़ापे' पर एक शेर स्मृति में कौध रहा है—"खुदारा, अच्छा किया 'पा' ही दिया बुढ़ापा; आधा या पौना देते तो क्या होता?"[59]

(6) और साहब, ब्राह्मण सभा दो फ़ाड़ हो गई। जो चौबीस कैरेट के बाभन थे वे रत्नाकर के साथ हो गए और जो चौदह कैरेट के बाभन थे, वे बाजपेयी के साथ। क्यों? क्योंकि बाजपेयी लहसुन-प्याल खाता है, अंडा खाता है, दारु पीता है। वह कबका बाभन? (पृ-61 रत्नाकर पांडे कांग्रेसी थे। समय राजीव हत्या के बाद का है)

(7) जिस प्रकार सबको मालूम है कि सत्यनारायण की कथा का माहात्म्य क्या है और किसीको मालूम नहीं कि वह कथा क्या है, उसी प्रकार सबको पता है कि डा गया सिंह क्या है, वे क्या कहते है, इसमें किसीको दिलचस्पी नहीं। लेकिन ऐसा उनके शत्रुओं का मानना है, ज्यादातर यही मानते हैं कि मुंह उनका होता है, बोलती सरस्वती है। उनके शत्रु तो उन्हें क्या-क्या नही कहते हैं? कहते हैं कि वे अस्सी के सामान्य जन-जीवन में एक 'दुर्घटना' है, प्राकृतिक आपदा है—जैसे कि बवंडर, जैसे कि आंधी, जैसे कि तूफ़ान, जैसे कि पाला, लेकिन ये सभी स्वीकार करते कि डॉ. गया सिंह न हों तो क्या अस्सी और क्या काशी! (पृ-62) अन्यत्र एक स्थान पर उनके संदर्भ में बताया गया है: सोचो, क्या हाल होगा उस चौराहे का जिस पर डॉ. गया सिंह लगातार तीन दिन नजर न आएँ? पहले दिन आश्चर्य, दूसरे दिन चिन्ता और तीसरे दिन से अफ़्वाहें...।[60]

(8) बात यह है कि मठ में बड़ी माताएं मिलती है--- बीस –बीस, पच्चीस-पच्चीस साल की। पार्वती माता, राधा माता, सरस्वती माता, रुक्मिणी माता! माताजी-माताजी चौबीस घण्टे लगाए रहते हैं सुसरे!भक्त-सन्त आए हैं माताजी! ये कलक्टर हैं दरभगा के! रात-भर रहेंगे! सेवा-ठल में कोई कमी न हो! पहले प्रसाद दीजिए, भोग बाद में लगाएंगे!... (पृ-88 बनारस अपनी विधवाओं—रांडों—के लिए भी जाना जाता है। भारत भर की, विशेषत: उत्तर भारत, पूर्वाचल, बंगाल से आयी हुई विधवाएं।ये विधवाएं मठों मे रहती है और उन्से किस प्रकार की सेवा-टहल ली जाती है उसका बडा ही व्यंग्यात्मक व सांकेतिक वर्णन यहां किया गया है।)

(9) और एक फ़ायदा हुआ है (अयोध्या घटना का) नगर के हर गली-मुहल्ले में दो-दो चार-चार व्यास और मानव-मर्मज्ञ पैदा हो गए हैं। जिन जजमनिया निठल्लों को कल तक पादने का भी सहूर नही था, वे घूम-घूम कर रामकथा कह रहे हैं और एक-एक दिन के पचीस-पचास हजार लूट रहे है। ये वाणी के तस्कर चूतिया बना रहे हैं बूढ़ी-विधवाओं और सेठों मारवाडियों को! और सुनोगे? अभीतक तो लौड़ों को बर्बाद कर रहे थे तुम लोग, इधर देख रहा हूं कि बेटे-पतोहू के सताये तमाम रिटायर्ड बूढ़े सवेरे-सवेरे हाफ्पेंट पहनकर बौद्धिक कर रहे है पार्क मे! (पृ-94: यह व्यंग्य सीधे बी जे पी और आर एस एस पर है।)

(10) आदर्श बालपोथी की चीज है। वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने की और पुरस्कार जीतने की चीज है। आदर्श की चिन्ता की होती कृष्ण ने तो अर्जुन भी मारा जाता और भीम भी। पाडव साफ़ हो गये होते! आदर्श तो है पतिव्रता का लेकिन देखो तो सम्भोग हर किसीसे! कोई ऐसी देवी है जिसका सम्बन्ध पति के सिवा और से न रहा हो? आदर्श उच्चत्तम रखो लेकिन जियो निम्नतम—यही परंपरा रही है अपनी! (पृ-34 : तुलनीय—'एज फ़ार एज द टेकस्ट आर कन्सर्न, वी आर सो हाई, बट प्रेक्टिकली वी आल स्पीक लाई!' एक अंगेज चिंतक का कथन।)

(11) अस्सी जर्जर अहो रहा है, ढह रहा है, मर रहा है; हमें दे दो तो नया कर दें—एकदम चमाचम! कल बनारस को चकाएंगे, परसों दिल्ली को ठीक

करेंगे, नरसों पूरे देश को ही गोद में ले लेंगे और झुलाएंगे अपनी गोदी में! यह बाद में पता चलेगा कि हम किसकी गोद में है—'जसोदा मैया कि पूतना की?' (पृ-112-113)

टिप्पणी—यह डॉ. गया सिंह केभाषण का एक अंश है। डॉ. गया सिण्ह चाहे जितने खब्त-खोपड़ी हों, अंट-संत बकते हों, गालियां देते हों, पर कई बार वे बड़ी मार्के की बात कर जाते है। पहले इस देश को चूसा अग्रेजों ने, देश की संपन्नता और सम्रृद्धि पर ग्रहण लगा दिया। राज तो मुसलमानों ने भी किया था, पर देश की संपत्ति देश में ही रही। गुजराती मुहावरे का प्रयोग करें तो 'घी के ठाम में घी पड़ा रहा', पर अंग्रेजों ने इस देश को कभी अपना माना ही नहीं। और चालाकी देखिए आज भी वे हमारे चहेते बने हुए है। मुसलमान शत्रु अंग्रेज दोस्त![61] और वही अंग्रेज-अंग्रेजिन आज पुन: हमारी सभ्यता और संस्कृति को लीलने के लिए आमादा है। आधा अस्सी हथिया लिया है।बड़ा अनत गौन चल रहा है। हमारा 'बुद्धिधन' वहां जा रहा है, और वहाँ का 'कचड़ा' हमारे यहां आ रहा है। डॉ. गया सिंह का गुस्सा और उनकी गालियां दोनों सात्विक है, सही है।)

(ख) हास्योक्तियां: यद्यपि 'व्यंग्य' और 'हास्य' में अंतर है। 'व्यंग्य' सेटायर के करीब है, और 'हास्य' कोमेड़ी के। व्यंग्य का उद्देश्य है अपने आलंबन पर चोट करना, ऐसी चोट कि वह तिलमिला उठे; दूसरी और हास्य का उद्देश्य है गुदगुदाना, हंसी-मजाक करना, हास्य पैदा करना। ध्यान रहे हास्य हमारे नव रसों में से है और उसका स्थायी भाव 'हास्' है। जबकि व्यंग्य अभी रस की कोटि में नहीं गिना जाता है। 'हास्य-व्यंग्य' यह शब्द युग्म द्वन्द्व समास बन गया है, कारण भले उभय में अंतर है, परंतु उनमें चोली-दामन का साथ भी है। कोई हास्य ऐसा नहीं होता जिसमें व्यंग्य अल्पांश में भी न हो, और कोई व्यंग्य ऐसा नहीं जिसमें कहीं-न-कहीं हास्य की कोई रेखा न हो।[62] इस संदर्भ में 'द आइडिया अफ़ कोमेडी' के लेखक मेरीडिथ महोदय का कथन है: 'इफ़ यू डिटेक्ट द रिडिक्यूल एण्ड योर काइंडलीनेस इज़ चिल्ड बाय इट यू आर स्लिपिंग (Slipping) इन्टु द ग्रास्प ओफ़ सेटायर,'[63] अर्थात् यदि किसी हास्य के आलंबन का इतना मजाक उड़या जाए कि उसके प्रति आपकी दयालुता खत्म हो जाए, तो ऐसी स्थिति में

हास्य व्यंग्य की कोटि में चला जाता है। अस्तु, 'काशी का अस्सी' भले ही एक व्यंग्य उपन्यास हो , पर उसका मुलाधार कहीं-न-कहीं हंसी है। बल्कि यहां हम 'फ़िफ़्टी-फ़िफ़्टी' कह सकते हैं। अतः उपन्यास में जहां 'व्यंग्योक्तियां है, वहां हास्योक्तियां भी हैं।

अतः यहा हमारा लक्ष्य ऐसी कुंछेक 'हास्योक्तियों' को उद्ध्त करने का रहेगा, जिनसे हम अपनी उपर्युक्त थीसिस को समीचीन ठहरा सके—

1. 'हर हर महादेव' के साथ' ... सड़ीके का नारा इसका (अस्सी का) सार्वजनिक अभिवादन है! चाहे होली का कवि-सम्मेलन हो, चाहे कफ़र्यू खुलने के बाद पी. एस. पी. या एस. एस. पी. की गाड़ी, चाहे कोई मंत्रि हो, चाहे गधे को दौड़ाता नंग-धड़ग बच्चा—यहां तक की जोर्ज बुश या मार्गरिट थेचर या गोर्बाचोवे चाहे जो आ जाए (काशी नरेश को छोड़कर)—सबके लिए 'हर हर महादेव के साथ'...। का जयजयकार! (पृ-11)

2. मेरा मतभेद है इससे। शान्तिप्रिय द्विवेदी को जितना तंग किया मुहल्ले ने, उससे अधिक तंग तो नहीं ही किया होगा बाबा को (अर्थात तुलसीदास को) और अगर उन्हें श्राप ही देना था तो जाते-जवाते इनके हाथ'मानस' की पोथी क्यों पकडा जाते? फ़िर भी ये कहते हैं, तो हम मान लेते हैं; लेकिन सरापकर भी क्या कर लिया बाबा ने? माथे पर चदन की बेदी, मुह मे पान और तोंद सहलाता हाथ!न किसीके आगे गिडगिडाना, न हाथ फ़ैलाना। दे तो भला, न दे तो भला! उधर मंदिर, इधर गंगा; और घर में सिलबट्टा! देनेवाला 'वह' जजमान...सड़ी के क्या देगा? भाँग छानी, निपटे और देवी के दर्शन के लिए चल पडे। (पृ 14: यहां अस्सी, सच्चे अस्सीवालो की जीवन-शैली को हास्य के माध्यम से व्यक्त किया है।)

3. 'ए भाई!ऊ तुमको किधर से लेखक-कवी बुझाता है जी? बकरा जइसा दाढ़ी-दाढ़ा बढ़ाने से कोई लेखक-कवी थोड़े नु बनता है? देखा नहीं था दिनकरवा को? अरे, उहै रामधारी सिंधवा? जब चदरा-औदरा कन्हियां पर तान के खड़ा हो जाता था—छह फ़ूटा जवान; तब भह-भह बरता रहता था! आउर ई... सड़ी के अख़बार पर लाई-दाना फ़ैलाय के, एक पुड़िया नून और एक पाव

मिरचा बटोर के भकोसता रहता है! कवी-लेखक अइसे होता है का? (पृ-17: यहां पूरबी बोली है, ध्यान रहे उसीमें 'कवी' कहा गया है, ब़र्तनी की गलती नहीं है। 'जैसा', 'दाढ़ी-दाढ़ा', 'बुझाता', 'थोड़ेनु', 'दिनकरवा', 'चदरा-ओदरा', 'आउर ई', 'भकोसता', 'लाई-दाना', आदि शब्दों पर ध्यान दीजिए।)

4. जिस पद को (अर्थात वाइस-चांसलरी) हासिल करने के लिए विद्वान ब्रीफ़केस में दस-बीस लाख रखकर महीनों मन्त्रालय-सचिवाल्य का चक्कर काटते हैं, उसी पद की भीख लेकर दोनों (लालूप्रसाद और मुलायम) चौथीराम के औसारे में पहुंचे। बारजे पर सूखता हुआ छींट का लंगोटा देखकर जितने ही खुश हुए थे, निकर में मूलभूत चौथीराम को देखकर उतने ही हतोत्साहित हुए!... (फ़िर) उन्होंने अपनी मंशा जाहिर की। चल सकते है, लेकिन एक शर्त पर! 'चौथे राम बोले। 'कहिए'। "मुझसे पहले वहां पप्पू की दुकान पहुंचाइए। '...' कहां?...। जहां से चलना चाहते हों?... पप्पू की दुकान क्या चीज है? 'इतना सुनना था कि भंगाचार्य की आंखें खुद-ब-खुद बन्द हो गई और उन्होंने मौन साध लिया! दुकान के स्वरुप के बारे में उनसे जो-जो प्रश्न किए जाते, जितनी जिज्ञासाएं की जातीं, सबके उत्तर में चौथीराम के मुंह से सिर्फ़ यही निकलता— नेति! नेति!" (पृ-42: यह वही चौथीराम है जो बी. एच. यु. के हिन्दी विभाग में प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष थे और हिन्दी मध्यकालीन साहित्य पर उनकी मास्टरी समझी जाती है। यह समूचा प्रसंग एक हास्य-कथा है।)

5. नारद को देखो तो दासी पुत्र, वसिष्ठ को देखो तो वेश्यापुत्र। कोई घड़े में पाया गया, कोई जंगल झाड़ में, कोई नदी में, कोई खेत में? जाने कितने तो किसी-न-किसी अप्सरा के, जो जिसे मिला, वह उसीका बेटा। टोना-टोटका पूजा-पाठ, कर्मकांड, यही इनकी आजीविका थी। ज्ञानकांड इन सबों के बस के बाहर का था। याज्ञवल्क्य तक को उसके लिए दौड़ना पड़ा था जनक के पास।सबके सब जारज और यही ...सड़ी के वर्ण-व्यव्स्था देते हैं। एखो तो सभी जातियों के गोत्र ब्राह्मण ऋषियों के नाम पर। जब सभीके पुरखे तुम्हीं हो तो उन्हें जातियों में क्यों बांडते हो बे? (पृ-63-64: डॉ. गया सिंह उवाच जिन्होंने कभी किसी अस्सीवासी से क्रोध में कहा था कि अगर मेरे दिमाग में भूसा है तो उस अहिर विद्वान

(चौथेराम?) के दिमाग में गोबर है, भंडभांड है, भटकटैया है, सरपत है, सेहुंड़ है, नागफ़नी है जिसे सांड तो क्या, सांप भी नहीं पूछेगा!)

6. इश्टूडेंटो! हम-तुम नहीं जानते, लेकिन दिल्लीवाले जानते हैं कि अख़बार कितनी गुणकारी चीज़ है? वे सवेरे-सवेरे इसे लेकर पाखाने में घुस जाते है। कमोड़ देखा है न, रेलगाड़ में जिस पर बैठकर झाड़ा फ़िरते है? तो उसी पर अपने घर में बैठ जाते है और अख़बार ऐसे खोलकर प,ढते है (हाथ फ़ैला-कर अख़बार पढने का अभिनय करते हुए) गोली, बन्दूक, बलात्कार, ठगी, जालसाजी, जहर, हत्या, मर्डर, बम विस्फ़ोट और इधर देखो, पेट साफ़। ऐसा खुलासा होता है कि चित्त चैतुन्य महाप्रभु! (पृ-71 : यह है ट्रिपुलसिंह के भाषण का एक अंश। जब भी लोग मजा लेना चाहते हैं उनके गले में एक माला डाल देते हैं। आप सिर पटककर मर जाइए। बिना माला के वे भाषण नहीं करते। माला पहनाए जाने पर वे कहीं पर भी, किसी भी विषय पर भाषण शुरू कर देते हैं। ऐसे केले के पात में, पात पात में पात निकलते हैं, वैसे उनके यहां भी बात में से बात निकलती है।)

इन उक्तियों के अतिरिक्त जहां-जहां भी उन्होंने, मतलब कि लेखक ने कहानियां डाली हैं, पंचतंत्र की शैली में या फ़िर किसी और शैली में, वहां-वहां मुकम्मल हास्य की सृष्टि हुई है, चाहे फ़िर वह कहानी 'शिथिलौच सुबद्धौ च' की हो, या बारबर बाबा की, या उल्लू और कौवे की, या तन्नी गुरु या कनीराम औधड़ की हास्य की सृष्टि होती रही है।

(ग) राजनीतिक उक्तिया: उपन्यास में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की राजनीतिक स्थितियों की जमकर चर्चा हुई है। अत: इसमें राजनीतिक उक्तियों का समावेश होना लाजमी समझा जायेगा। ऐसी उक्तियां प्राय: व्यंग्यात्मक है। अत: व्यंग्यात्मक उक्तियों और राजनितिक उक्तियों में अंतर करना, उनमें विभाजक रेखा खींचना मुश्किल है। इसे विडंबना नहीं तो और क्या कहें कि हमारे देश की राजनीति हास्य और व्यंग्य का विषय हो गई है। यहां जिन राजनीतिक उक्तियों को दिया गया है उनमें कहीं हास्य है तो कहीं व्यंग्य है। यथा--

(1) और आपसे यह भी बता दें कि जिसने 1990 के अक्तूबर-नवम्बर महीने में अस्सी नहीं देखा उसने दुनिया भी देखी तो क्या देखी? देश जल रहा था

उसके पहले से। उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक। सिर्फ़ दिल बचा था। दिल माने उत्तर प्रदेश! मंडल-कमंडल के झगड़े ने इसे भी लपेट लिया। दिल्ली की सरकार अब गिरी कि तब गिरी—वही लगा हुआ था। पप्पू की दुकान के सामने, कहना वीरेन्द्र श्रीवास्तव का कि पी. एम. मंडल आयोग में फ़ंस गया, सी. एम. बाबरी मस्जिद में और डी. एम. दोनों की व्यवस्था में देश ...सड़ी के जहां-का-तहा है! (पृ-23: तत्कालीन राजनीति का यथार्थ-चित्रण, अस्सल अस्सी की शैली में)

(2) फ़िर राजनीति का मतलब क्या हुआ आचार्य? साथ में खड़े शैलेन्द्र ने ऐसे पूछा था जैसे चन्द्रगुप्त ने चाणक्य से पूछा हो। 'राजनीति बेरोजगारों के लिए रोजगार कार्यालय है, इम्प्लायमेण्ट ब्यूरो। सब आई. सी. एस. , पी. सी. एस. हो नहीं सकता। ठेकेदारी के लिए भी धनबल-जनबल चाहिए। छोटी-मोटी नौकरी से गुजारा नहीं। खेती में कुछ रह नहीं गया है। नौजवान बेचारा पढ़-लिखकर, डिग्री लेकर कहां जाए? और चाहता है लम्बा हाथ मारना। सुनार की तरह खुट-खुट करने वालों का हाल वह देख चुका है, तो बच गई राजनीति। वह सत्ता की भी हो सकती है, विपक्ष की भी और उग्रवाद की भी। समझिए कि दादागिरी यहां भी है, उठा-पटक है, चापलूसी है, हड़बोंगई है, तरबली है, संघर्ष है लेकिन वह कहा नहीं है? पाना और खोना किस धंधे में नहीं है? (पृ-35: यह कथन रामवचन पाडे का है जिन्हें देश की राजनीति और राजनीति करने वालों का अच्छा विश्लेषण दिया है। आजादी से पहले राजनीति में वे जाते थे जिनमे देश या समाज के लिए कुछ कर गुजरने का जज्बा था। उनमें से कुछ तो काफ़ी संपन्न और खाते-पीते लोग थे, बड़े-बड़े वकील-बैरिस्टर थे, राजा-नवाब थे, जमींदार थे। संक्षेप में बड़े संपन्न और समृद्ध किस्म के लोग थे। परंतु आजादी के बाद जो पढ़े-लिखे अनपढ़ों की जौज आयी उन्होंने राजनीति को भी एक धंधा बना लिया। परिच्छेद के अंतिम वाक्य पर गौर फ़रमाइए – 'लेकिन यह कहां नहीं है।' यह मतलब संघर्ष, खतरा आदि-आदि। लिहाजा राजनीति उनके लिए महज़ एक 'धंधा' है। एक दोहा स्मृति में कौध रहा है— "खांटी खूंट का युग है, रहिये थामे खूंट। कबिरा सूई के छेद सों निकलगये कई ऊँट॥"[64] तो इस धंधे में घुसने के लिए 'खांटी खूंट' चाहिए, और

एक बार ऐसा खूँटा मिल जाए तो सूई के छेदों से ऊंट के ऊँट निकालते रहिए, तब तक कि उस खूंटे को उखाड़ फ़ेंकने की ताकत (मनी पावर और मसल पावर) न आ जाए और खुद एक खूँटा न बन जाएं।)

(3) तुम भीतो बताओ अपना। कल रत्नाकर पड़वा ने जनेऊ बंटवाया है बाभनों में। हाथ में जनेऊ और गंगाजल देकर कसम खिलाई है तुम सबको । बोलो है कि नहीं?' है, बिलकुल सही है। देखो, एक जनेऊ मुझे भी मिला है, यह देखो , 'मिश्राजी ने जेब से जनेऊ निकालकर दिखाया, 'लेकिन भूमिहार, भूमिहार है। बड़ी पुरानी मसल है—'भाई, भतीजा, भानजा भांड, भूत, भुइंहार, ए छहो मकार से सदा रहो हुसियार; तो भरोसा है कोई मुंइहारों का? यहां तो जनेऊ बांटो चाहे बछिया—कम्यूनिस्ट कम्यूनिस्ट ही रहेगा बाभन नहीं होगा।'... ' अच्छा तो, खींच ल्यौ थुन्हीं, सलाम भाई खंडहर। खंडहर भाई सलाम। रामजी राय चल रहे है?' रामजी राय चले और चार कदम चलकर लौट आए— 'ई... सड़ी के सौ करोड़ की आबादी में पाँच झंटकुल्ली सी. पी. आई. और दिखाएंगे ऐसे जैसे ये न हों तो देश ही न चले।' (पृ-46)

(4) सुन रहे है उन्हें? 'मजाक में चल रही बातों के बाद वीरेन्द्र सहसा गंभीर हो गए, 'यह है उनकी बुद्धि, एक लाला भाजपा से इसलिए नाराज है कि लालाओं के लिए वहां जगह नहीं और कहोगे कि मुलायम और कांसीरात जातिवाद कर रहे है। हम खिलाफ़ है तुम्हारे दोमेंहेपन के। तुम लोग थूंकते हो। फ़िर चाटते हो और समझते हो कि देश चूतिया है। तुमने कहा --- सोनिया विदेशी है, लेकिन जब कांग्रेस ने आडवानी की गांड में डंडा किया कि वह भी विदेशी है तो कहना शुरु किया कि सोनिया देशी है, विदेशी नहीं। इस तरह पहले कहा—काशी-मथुरा एजेंडा पर नहीं है, अब आज कह रहे हो कि अयोध्या में राम-मंदिर बनेगा। कल फ़िर कहोगे कि नहीं, हम कोर्ट को नहीं मानते। साले कोई दीन-ईमान है तुम्हारा? राजकिशोर ने जैसे ही कुछ कहन चाहा, वीरेन्द्र ने बिना मौका दिए आगे कहा— "और कहते हो—राजतिलक की करो तैयारी, आ रहे है अटलबिहारी। ... सड़ी के, राजतिलक राजतंत्र में होता है, लोकतंत्र में नहीं, तुम्हारे दिमाग में आज भी राजतंत्र है।" (पृ. 56)

उपर्युक्त बात वीरेन्द्र श्रीवास्तव बी.जे.पी. वालों के लिए कहते हैं, परन्तु इस काजर की कोठरी में कोई साफ-सफ्फाक नहीं है। सबके सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। ये दोमुंहापन सब जगह है। इस संदर्भ में एक कविता स्मृति-पटल पर आ रही है –

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M.S. University of Baroda

"मित्र ! तुम्हारा ये दोमुंहे सांपवाला चरित्र कब छोड़ोगे?
तुम्हारा एक मुंह कुछ कहता है, दूसरा मुंह कुछ और
या तो उठा लो दायित्य उस दूसरे मुंह का
या काट डालो उसे !
पर मित्र ! तुम ऐसा नहीं करोगे
मालूम है मुझे
तुम्हारा ये दो मुंहे सांपवाला चरित्र तुमको ऐसा नहीं करने देगा !!!"[65]

(5) "आप खामखाह गालियां दे रहे हैं इन्हें। कांग्रेसी वीरेन्द्र बोले, "इसके लिए भाजपा को कोई दोष नही दे सकता। देश उसके एजेडे पर था ही नहीं। उसके एजेंडा पर था राष्ट्रीय स्वाभिमान और गोसंरक्षण! देश ...सड़ी के रसातल मे जाता है तो जाए, ये अयोध्या और पोखरन जाएंगे! '......' हम न अयोध्या जाएगे, न पोखरन, अब हम रोम और इटली जाएंगे वकील साहब! आप 'शिथिलौ च सुबद्धौ च' के गिरने की आस लगाए रहिए! ' राधेश्याम दूसरे कोने से चिल्लाए!" (पृ. 93 : यह है अस्सी का राजनीतिक वार्तालाप कांग्रेसी वीरेन्द्र श्रीवास्तव और राधेश्याम पांडे के बीच, बाजपेयी के पी.एम. होने के बाद का।)

(6) " 'देखो डाक् साहब?' राजकिशोर मेरी और मुखातिब हुए – 'यह है जाति का नया चेहरा! मुलायम जिसे टिकट दें, वह अहिर, कासीराम जिसे टिकट दें, वह चमार, नितीशकुमार जिसे टिकट दें, वही कुर्मी, ठाकुर, बामन, बनिया, लाला चाहे जो हो। कांसीराम का टिकट मिला नहीं कि चमार हुआ। बनारस से अवधेश राय लड़ रहे हैं बसपा से और हरिजन-बस्तियों में जाकर देख लीजिए। अरे इसे छोड़िए, अपने यहां चन्दौली में ही देखिए। कांग्रेस से

श्यामलाल यादव है और मुलायम की मुहर के साथ सपा से जायसवाल। अब यादव श्यामलाल नहीं रह गए, यादव हैं जवाहर जायसवाल ... " (पृ. 41)

इस तरह के तो कई प्रसंग और परिच्छेद हैं, परंतु स्थानाभाव के कारण कुछेक उदाहरणों से काम चलाया है।

(ङ) विषादोक्तियां :

उपन्यास की कथ्य-चेतना के अंतर्गत हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि 'काशी का अस्सी' का ऊपरी आवरण भले ही हास्य-व्यंग्य, गाली-गलौज, राजनीतिक छींटाकशी हो; उसके भीतर एक गहरा दर्द है, अवसाद है, विषाद है। लेखक का मूल उद्देश्य तो इसे रेखांकित करने का है। अतः यहां कुछेक उदाहरण उसके भी प्रस्तुत कर रहे हैं –

(1) "वे देख रहे थे कि चीजें बदल रही हैं और यह बदलाव बाहर नहीं, उन्हीं के घर में हो रहा है – इसके होने, न होने पर उनका कोई वश नहीं है, उनके न चाहते हुए भी होता जा रहा है। वे देख रहे थे कि अस्सी के भीतर से ही एक नया नगर उग रहा है – धीरे-धीरे उग रहा है और वह दिन दूर नहीं जब वही नही, सारे गुरु अपना-अपना अस्सी संभाले हाशिये पर चले जाएंगे – वहां, जहां नगर के कूड़े-कचरे का ढेरे है।" (पृ.152)

(2) "हंसी धीरे-धीरे खत्म हो रही है दुनिया से। पश्चिम के लिए इसका अर्थ रह गया है – कसरत, खेल। क्लब, टीम, एसोसिएशन, ग्रुप बनाकर निरर्थक, निरूद्देश्य, जबर्दस्ती जोर-जोर से 'हो-हो' 'हा-हा' करना। इसे हंसी नहीं कहते। हंसी का मतलब है जिन्दादिली और मस्ती का विस्फोट, जिन्दगी की खनक। यह तन की नहीं, मन की चीज है। यह किसी भी सनसनीखेज खबर से कम नहीं कि जम्बूद्वीप में एक ऐसी भी जगह है जहां हंसी बची रह गई है।" (पृ. 162)

उपर्युक्त उक्तियों में काल-व्यतिक्रम हुआ है। लेखक ने उपन्यास का जो शिल्प चुना है उसमें उपन्यास के प्रारंभ से अन्त तक की घटनाओं में ऐतिहासिक काल-क्रमिकता नहीं है। प्रथम अध्याय – 'देख तमाशा लकड़ी का' – में लेखक ने अस्सी के वातावरण की भूमिका बांधी है, वहां समय लगभग सातवें-आठवें दशक का है। फिर उसके बाद तुरंत ही जो अध्याय आया है –

'सन्तों घर में झगरा भारी' में सीधे लेखक 11 फरवरी 1998 पर आ गया है, अर्थात् नवें दशक पर जिसमें खूब राजनीतिक उथल-पुथल हुई थी। बी.जे.पी. पहली बार कई पक्षों के सहारे से सत्ता में आयी थी। [66] उसके बाद के पृष्ठों में 6 दिसम्बर की घटना का और उनसे जुड़े हुए नारों का उल्लेख लेखक ने किया है। अभिप्राय यह कि कथा कहीं भी 'A to Z' नहीं चली है। उपन्यास में अनेकों कथाएं है, अनेकों संस्मरण, और वे ऐतिहासिक कालक्रमानुसार नहीं आये हैं। इसके लिए लेखक ने पूर्व-दीप्ति (Flash-back), शब्द-सहचयन (Word-Association) तथा प्रसंग-सहचयन (Eventual Association) जैसी कथानक – रूढ़ियों का प्रयोग किया है। यह विवेचन इसलिए कि ऊपर जो दो उदाहरण प्रस्तुत किए गए है, उनमें प्रथम उदाहरण पृ. 152 पर आया है जिसमें लेखक ने अस्सी और देश की विषादग्रस्त स्थिति का जायजा लिया है और दूसरा उदाहरण पृ. 162 पर आया है, जिसमें अंतिम वाक्य में अस्सी कुछ हंसी बची रह गयी है, ऐसा कहा गया है। वस्तुतः यह लेखक की 'अधोमुखी कथा-प्रवाह' वाली टेकनिक के कारण हुआ है। अब एक-दो और उदाहरण देकर इस अध्याय को यहां समाप्त करेंगे –

(3) "6 दिसम्बर की अयोध्या की घटना की देन क्या है? जो मुसलमान नहीं थे या कम थे या जिन्हें अपने मुसलमान होने का बोध नहीं था, वे मुसलमान हो गए रातोंरात। रातोंरात चन्दा करके सारी मस्जिदो का जीर्णोद्धार शुरू कर दिया। देश की सारी मस्जिदो पर लाउडस्पीकर लग गए। मामूली से मामूली टुटही मस्जिद पर भी लाउडस्पीकर लग गया। जिस मस्जिद में कभी नमाज़ नहीं पढ़ी जाती थी, उससे भोर और रात में अजान सुनाई पड़ने लगी। जो नमाज में नियमित नहीं थे, वे नियमित हो गए।" (पृ. 93-94)

मतलब कि मुसलमान ज्यादा मुसलमान हो गए और हिन्दू-हिन्दू। महा-आरतियां होने लगीं। नये-नये मंदिर बनने लगे ! सत्यनारायण और सुंदरकांड होने लगे। हिन्दू – मुसलमानों में दरार पड़ गयी और ये दरार बढ़ती ही गई है। पहले कौमी दंगे बड़े शहरों में होते थे मुंबई, अहमदाबाद, मेरठ अलिगढ़... और अब ये गांवों-कस्बों तक पहुंच गए हैं। मैं महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय की छात्रा रही हूं, ये बदलाव मैंने अपनी आंखों से देखा है। पहले कभी-कभार कोई बुर्का नज़र

आता था, इधर कोई मुसलिम कोलेजियन लड़की नहीं होगी जो बुर्का पहनकर न आती हो। सिर पर की टोपियां (Skull-Caps) बढ़ गयी हैं। कोई त्यौहार ऐसा नहीं जाता, जब मन में खटका न हो। और हर त्यौहार के पीछे करोड़ों-अरबों का खर्चा, काहेका? तो सुरक्षा के लिए बम-विस्फोटों के अंदेशों के लिए। यह दोजख़ हमारा बुलाया हुआ है।

(4) "लिकिन आप खामखाह नाराज हैं अमरीका से?' जो ढाई-तीन हजार विदेशी हैं गलियों में, उनमें सबसे कम अमरीकी हैं। '......' गलियों में और सबसे कम!' गया सिंह हंसे, 'क्या हो रहा है गलियों में, देखा है कभी? डालर का धन्धा! दीनबंधु, डालर अमरीका की जीभ है। यह शुरू में ऐसे ही किसी मुल्क को चाटना शुरू करता है जैसे गाय बछड़े को चाटती है – प्यार के साथ! बाद में जब चमड़ी छिलने लगती है, खाल उधड़ने लगती है, दर्द शुरू हो जाता है, जीभ पर कांटे उभरते दिखाई पड़ने लगते हैं, जबडे चलने की आवाज़ सुनाई पडती है। तब पता चलता है कि वह जीभ गाय की नहीं, किसी और जानवर की है। और क्या समझते हो, जो देखते-देखते देश का देश चबा गया हो और उसमें भी सोवियेट रूस जैसा देश – उसके लिए नगर का मुहल्ला क्या चीज है?" (पृ. 112)

यह है अमरीका का उपनिवेशवाद और बाजारवाद। भूमंडलीकरण (ग्लोबलाइजेशन)! दुनिया सिकुड़ रही है, विश्व-ग्राम (ग्लोबलाइजेशन) की कल्पना और हम है कि आनंदित हो रहे हैं। सोच रहे हैं कि ये सब हमारे लिए हो रहा है। इधर संगोष्ठियों में पढ़े-लिखे अनपढ़ अध्यापकों की फौज़ इनके गुणगान गा रही है। कोई ऐसा पेपर नहीं होगा जिनमें इन शब्दों का प्रयोग न होता हो। पर हम कितने बुद्धू और मूर्ख है। हमें दिखता नहीं है कि हमें चाटा जा रहा है। हमारा खून पिया जा रहा है। एक इस्ट इंडिया कंपनी को हटाने में हमें ढाई सौ साल लग गए थे। इतनी मल्टी-नेशनल कंपनियों को हम कैसे हटा पायेंगे? अख्बार-मीड़िया सबको ये अमरीका रूपी व्यापारी (आयो घोष बड़ो व्यापारी) खरीद रहा है और हम निन्यानबे के चक्कर में बुरी तरह से फंस गए हैं।

(5) "उन्होंने (तन्नी गुरु ने) कभी नहीं जाना, न जानने की इच्छा कि, न जरूरत समझी जानने की कि पड़ोस में या बाहर कौन कैसे रहता है? क्या

खाता है, क्या पीता है, क्या पहनता है, कैसा बँगला है, कैसी गाड़ी है, है भी कि नहीं – और ये लौंडे? जिन्हें ठीक से गांड धोने का सहूर नहीं, वे अपनी और दूसरों की 'हैसियत' देखने लगे हैं। जरा बातें सुनो इनकी? वे कहते – 'जाओ बाहर? हंसो-गाओ। खेलो-कूदो।' लेकिन वे या तो टी.वी. से चिपके रहते हैं या 'होमवर्क' से।" (पृ. 153)

हंसी और मस्ती, जिन्दगी की खनक को खाने वाली दीमक यह है। यह पूरे देश को खोखला कर देगी पहले कहा जाता था – 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है " – अब इस बाजारवाद ने सूत्र ही उलट दिया है – आविष्कार आवश्यकता की जननी है' – पहले चीज-वस्तु इजाद होती है, बनती है और फिर उसकी उपयोगिता को ढूंढा जाता है। "घाटों पर वियाग्रा, पेनाग्रा, नियाग्रा और किन-किन चीजों के पावडर बिक रहे हैं, और खरीद कौन रहे हैं – बूढ़े! चोरि-छिपे! पेंशन की रकम रोटी-दाल में नहीं पुष्टई में जा रही है।"[67]

इस तरह उपन्यास 'हास्य-व्यंग्य' का कम दर्द और विषाद का ज्यादा बन जाता है। हास्य और व्यंग्य तो उपादान मात्र हैं। असली बात है अस्सी से हसी के लुप्त होते जाने की, और इस तरह 'अस्सी' केवल बनारस का नहीं, पूरे देश का प्रतीक बन जाता है। पंक्तियां स्मृति में उभर रही है ---

"कबिरा कैसे लग गया, मुर्दनगी का रोग।
कहा गये? कैसे गये? हंसते-हसियाते लोग ?"[68]

भाषाशैली :

'काशी का अस्सी' उपन्यास की भाषाशैली सहज, सरल व स्वाभाविक है। उसमें भाषागत संतुलन मिलता है। आवश्यकतानुसार संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग लेखक ने निःसंकोच किया है। परंतु कहीं भी कृत्रिमता, क्लिष्टता या अस्वाभाविकता का आभास तक नहीं होता। यथावश्यक भाषा में मुहावरों और कहावतों का प्रयोग लेखक ने किया है। यहां 'अस्सी' पर बोली जानेवाली भाषा, बल्कि 'बोली' का प्रयोग लेखक ने किया है, फलतः उसमें अवधी, भोजपुरी, बिहारी आदि भाषाओं और बोलियों के शब्द उपलब्ध होते हैं। सिर्फ गालियों को छोड़कर, लेखक ने भाष-प्रयोग में प्रेमचंद की सरणी का

अनुसरण किया है। गालियों के संदर्भ में इतना ही कहा जा सकता है कि जो बनारस में रह चुका है, याकि जिसने अस्सी को देखा, परखा और जांचा है, इतना ही नहीं जिसने स्वयं उसको जिया हो, उसे उसमें किसी प्रकार की अस्वाभाविक्ता या असहजता नज़र नहीं आयेगी।

उपन्यास का रूपबंध व्यंव्यात्मक है। अतः उसकी भाषा लक्षणा-व्यंजना शक्तियों का होना भी जरूरी है और जहां ये दो शक्तियां होगी, वहां उसकी भाषाशैली में प्रतीकात्मकता, सांकेतिकता, लाक्षणिकता, नवीनता आदि तो होंगे ही जो यहां भी है।

उपन्यास में राजनीनि की चर्चा बहुतायत से हुई है। इस दृष्टि से उसके रूपबंध को 'राजनीतिक उपन्यास' के अंतर्गत भी श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। उसमें सन् 1980 से लेकर सन् 1999 तक की राजनीतिक गतिविधियों का लेखाजोखा मिलता है, परिणाम स्वरूप उसकी भाषा में राजनीतिक शब्दावली का पाया जाना भी स्वाभाविक ही जाना जायेगा। उसमें पार्टियों के संक्षिप्त रूप दिये गये हैं, जैसे – भाजपा (भारतीय जनता पार्टी), बसपा (बहुजन समाज पार्टी), सपा (समाजवादी पार्टी), सी.पी.आई. (कोम्यूनिस्ट पार्टी आफ इण्डिया), डी.एम.के. (द्रविड मुन्नेत्र कझगम) आदि आदि। इसी तरह राजनीतिक पार्टियों से जुड़े हुए नेताओ के नाम भी आये है, जैसे आडवानी, अटल विहारी बाजपेयी, कांसीराम, सोनिया गांधी, लालुप्रसाद यादव, मुलायम सिंह यादव, वी.पी. सिह देवीलाल आदि-आदि। दूसरे कुछ राजनीतिक सूत्र और नाले भी उछाले गये है जिनका उल्लेख हमने यथास्थान किया है।

विभिन्न भाषाशैलियों में यथावश्यक लेखक ने समासशैली, व्यासशैली, धारा शैली, विदग्ध-शैली आदि का प्रयोग तो किया ही है। कहीं-कहीं उद्धरण – शैली के भी बड़े मनोरंजक उदाहरण मिलते हैं, यथा ---

> "तेरेहुस्न का हुक्का बुझ गया है,
> एक हम हैं कि गुड़गुड़ाए जाते हैं।"[69]

श्रीवास्तवजी अपने पुराने कांग्रेसी गुरु को देखकर यह शेर सुनाते है। इससे यह भी संकेतित हुआ है कि कांग्रेस पार्टी का वह पहला सा रुतबा और

ठस्सा नहीं रह गया है। प्रथम अध्याय 'देख तमाशा लकड़ी का' में वह जग-प्रसिद्ध भजन भी आया है –

"सुनो सुनो ए दुनियावालो, यह जग बना है लकड़ी का
जीते लकड़ी, मरते लकड़ी, देख तमाशा लकड़ी का। [70]

ऐसे ही लोकबानी का एक काव्य-प्रकार है 'जोगीड़ा'। हिंदी प्रदेशों में चुनावी माहौल को गरमाने के लिए नये-नये जोगीडे रचे जाते हैं, यथा –

"कवन देस का राजा अच्छा, कवन देस की रानी
कनस का कपड़ा अच्छा, कवन देस का पानी
कानपुर का कपड़ा अच्छा, राजघाट का पानी
रामनगर का राजा अच्छा इटलीगढ़ की रानी!"[71]

इनके अतिरिक्त लेखक ने फगुवा, कबीर, निरगुन आदि का प्रयोग भी किया है जो 'अस्सी' के वातावरण के अनुरूप हैं।

उपन्यास में डॉ. गया सिंह, ट्रिपुलसिंह जैसे भाषणकला के वीर हैं, अतः अनेक स्थानों पर संभाषण-शैली का प्रयोग भी लेखक ने किया है।

उपन्यास के अंत तक जाते-जाते वह काफी विषादपूर्ण हो गया है। कुछ पात्र तो विक्षिप्त-से हो गए हैं। अतः लेखक ने अंतिम अध्याय में 'एब्सर्ड-शैली' का प्रयोग भी किया है। यथा –

"मित्रो, सवेरा जाने कबका हो चुका था मगर भीड जहा की तहा और जस की तस थी – कान पारे हुए, अवसाद में डूबी हुई और चुप। बाजे-बाजे बंध चुके थे हीरालाल और पार्टी के। बारी खत्म हो चुकी थी उनकी। अब कुछ नहीं रह गया था सुनाने को। इन्तजार था तो बस बुल्लू की और से समापन का। लेकिन संकेत पाते ही हीरालाल चंग के साथ चल पड़े और बुल्लू के बगल में खड़े हो गए। 'तो भैया लोगो! बाबू लोगो! आगे क्या बताए, क्या न बताएं; क्या सुनाएं, क्या न सुनाएं; क्या गाएं, क्या न गाएं – इसलिए कि बुढ़ऊ मिले भी और नहीं भी मिले।"[72]

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं –

(1) जिस प्रकार 'राग दरबारी' उपन्यास में शिवपालगंज गांव और वहां के गंजहे लोगों की तमाम-तमाम विशेषताओं को उकेरा गया है और उस गांव को उसकी समग्रता में प्रस्तुत किया गया है, ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में बनारस के 'अस्सी' लोकेल को उसकी समग्रता में, उसकी बोली-बानी के साथ यहा यथार्थतः प्रस्तुत किया गया है।

(2) जिस प्रकार बकौल असगर वज़ाहत कहा जाता है कि जिसने लाहौर (विभाजन-पूर्व के) नही देखा, उसका इस दुनिया में आना व्यर्थ है; ठीक उसी प्रकार कह सकते हैं कि जिसने 'सुबहे बनारस', और उसमें 'अस्सी' (अब तुलसीनगर) न देखा हो उसका इस दुनिया में आना न आना बराबर है। प्रस्तुत उपन्यास 'अस्सी' अपनी सोलहों कलाओं में खिलकर आया है। बकौल लेखक के पूरे खिलान पर है।

(3) इसमें लेखक की भाषाशैली सहज औ स्वाभाविक है और उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं के शब्दों का प्रसंगानुरूप एवं पात्रानुरूप प्रयोग किया है।

(4) उपन्यास में व्यंग्यात्मक वाक्यों, सूत्रों, नारों और कहावतों का प्रयोग हुआ है, जो उसके व्यंग्यात्मक रूपबंध के अनुरूप है।

(5) उपन्यास मे व्यग्यात्मक, हास्यमूलक, राजनीतिमूलक और विषादपूर्ण स्थितियो को रूपायित करने वाली अनेको प्रोक्तियां उपलब्ध होती है।

(6) उपन्यास की भाषिक-सरचना उसके व्यंग्यात्मक रूपबध के अनुरूप है। उसमें कुछ राजनीतिक स्थितियों और व्यक्तियो का इतना मखौल उड़ाया है कि व्यक्ति तिलमिला सकता है। सचमुच में हम इसे चर्चित, विवादित और बदनाम कह सकते हैं। लेकिन बदनाम सिर्फ अभिजनों में, आम जनों में नहीं! आम जन और और आम पाठक ही इस उपन्यास के जन्म की जमीन रहे हैं।

(7) उपन्यास अपनी गालियों के लिए भी चर्चित और लांछित हुआ है। पर 'अश्लीलत्व' को न जानने वाले ही उसे अश्लील कह सकते हैं। उसमें एक नारी-योनिवाची गाली कमजकम सौ-डेढ़ सौ बार आयी है, पर इसका अचम्भा उसे ही ब्याप सकता है जो अस्सी के मिज़ाज से नावाकिफ़ हो। सब मिलाकर

काशीनाथ की नज़र में 'अस्सी' पिछले दस वर्षों से (अब प्रन्द्रह-बीस कह सकते हैं) भारतीय समाज में पक रही राजनीतिक-सांस्कृतिक खिचड़ी की पहचान के लिए चावल का एक दाना भर है।

:: सन्दर्भानुक्रम ::

(1) काशी का अस्सी : डॉ. काशीनाथ सिंह : पृ. 162 ।

(2) वही: उपन्यास के प्रारंभ से ।

(3) द्रष्टव्य : वही : पृ. क्रमशः 11, 12, 12, 12, 12, 12, 18, 18, 23, 23, 24, 25, 28, 28, 38, 42, 70, 104, 118 ।

(4) वही : पृ. 18 – 19 ।

(5) वही : पृ. 19 ।

(6) वही : पृ. 21-22 ।

(7) वही : पृ. 88-89 ।

(8) वही : पृ. 89 ।

(9) वही : पृ. 104 ।

(10) द्रष्टव्य : नदी फिर बह चली : हिमांशु श्रीवास्त्व : पृ. 278 ।

(11) द्रष्टव्य : दिल एक सादा कागज : डॉ. राही मासूम रज़ा : पृ. 63 ।

(12) द्रष्टव्य : सलाम-आखिरी : मधु कांकरिया : पृ. 187 ।

(13) काशी क़ा अस्सी : पृ. 11 ।

(14) वही : पृ. 11 ।

(15) वही : पृ. 11-12 ।

(16) वही : पृ. क्रमशः 12, 12, 14, 18, 28, 35, 42, 43, 46, 56, 57, 70, 70 ।

(17) द्रष्टव्य : वही : पृ. क्रमशः 70, 11, 104,104, 118, 118, 118, 118, 38 ।

(18) वही : पृ. 11 ।

(19) वही : पृ. 34 ।

(20) द्रष्टव्य : वही : पृ. क्रमशः 11, 26, 25, 25, 40, 46, 46, 46, 50, 60, 23, 44, 54, 54 ।

(21) वही : पृ. 54 ।

(22) वही : पृ. 11-12 ।

(23) वही : पृ. 40 ।

(24) वही : पृ. 74 ।

(25) वही : पृ. 75 ।

(26) द्रष्टव्य : गुजरात समाचार : गुजराती दैनिक : 27-09-11, पृ. 8 ।

(27) काशी का अस्सी : पृ. 101 ।

(28) वही : पृ. क्रमश: 11, 12, 13, 14, 17, 17, 19, 18, 19, 22, 22, 22, 28, 31, 35, 37, 37, 38, 38, 40, 41, 43, 46, 49, 53, 52, 55, 57, 61, 63, 67, 67, 67, 67, 67, 67, 70, 71, 71, 75, 75, 75, 74, 74, 77, 77, 84, 85, 88, 88, 90, 93, 95, 104, 116, 118, 118, 133, 133, 134, 147, 156, 156, 157, 166, 166, 166, 166, 167, 169, 172, 172, 172, 172, 172, 172, 172, 172 ।

(29) द्रष्टव्य : काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः 17, 17, 37, 37, 38, 45, 46, 46, 47, 54, 63, 63, 75, 87, 96, 108, 109, 117, 117 ।

(30) द्रष्टव्य : व्यवहारिक हिन्दी व्याकरण तथा रचना : डॉ. हरदेव बाहरी : पृ. 108-109 ।

(31) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः 17, 17, 78, 23, 23, 119, 125 ।

(32) मानसमाला : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृ. 23 ।

(33) कबिरा खड़ा बाज़ार में : डॉ. पारूकान्त देसाई : भूमिका से ।

(34) वही : भूमिका से ।

(35) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः 12, 13, 14, 18, 19, 28, 30, 39, 41, 43, 42, 47, 60, 64, 64, 71, 70, 75, 90, 103, 103, 104, 110, 117, 148, 162, 169 ।

(36) वही : पृ. क्रमशः 11, 11, 11, 12, 12, 12, 12, 23, 22, 25, 25, 28, 33, 34, 40, 44, 46, 56, 56, 56, 56, 56, 56, 61, 61, 69, 69, 69, 69, 69, 69, 70, 29, 29, 29, 93 ।

(37) काशी का अस्सी : पृ. 38 ।

(38) वही : पृ. क्रमशः 11, 11, 17, 21, 23, 34, 37, 36, 41, 47, 60, 70, 88, 92, 103, 111 ।

(39) वही : पृ. क्रमशः 12, 12, 13, 13, 18, 21, 21, 23, 23, 32, 35, 37, 39, 43, 49, 47, 57, 57, 60, 62, 64, 65, 65, 68, 69, 69, 72, 74, 74, 75, 78, 88, 91, 94, 98, 100, 101, 106, 116, 118, 127, 128, 131, 137, 143, 143, 145, 148, 151, 156, 157, 166 ।

(40) चिंतनिका : पारूकान्त देसाई : पृ. 110 ।

(41) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः 171, 171, 163, 150, 145, 145, 145, 145, 135, 134, 128, 120, 120, 120, 120, 118, 114, 106, 106, 92, 92, 80, 80, 80, 79, 79, 74, 74, 73, 73, 73, 70, 63, 62, 62, 62, 62, 61, 59, 50, 50, 45, 38, 35, 35, 34, 34, 33, 33, 31, 30, 23, 19, 17, 16, 12, 12, 12, 11 ।

(42) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः 11, 13, 15, 18, 18, 18, 20, 22, 24, 25, 25, 28, 28, 35, 35, 39, 48, 48, 55, 58, 62, 62, 72, 76, 78, 81, 81, 83, 85, 87, 93, 93, 99, 101, 101, 103, 103, 103, 103, 103, 103, 106, 118, 118, 127, 128, 131, 141, 142, 142, 142, 142, 144, 144, 145, 150, 151, 153, 153, 153, 153, 154, 154, 155, 155, 159, 159, 162, 162, 170, 171, 171, 172 ।

(43) वही : पृ. क्रमशः 11, 11, 11, 11, 11, 11, 11, 11, 12, 13, 16, 16, 16, 17, 17, 19, 19, 23, 23, 23, 24, 28, 29, 32, 32, 34, 34, 37, 40, 41, 52, 58, 66, 68, 68, 68, 70, 75, 75, 76, 77, 79, 87, 88, 90, 91, 91, 95, 95, 95, 99, 99, 99, 101, 103, 104, 104, 105, 105, 105, 105, 105, 105, 105, 105, 105, 106, 106, 106, 106, 106, 107, 107, 107, 107, 107, 107, 107, 108, 109, 109, 109, 112, 112, 112, 112, 116, 117, 118,

118, 118, 118, 118, 118, 118, 118, 118, 119, 119, 119, 119, 119, 120, 121, 121, 125, 133, 136, 140, 140, 140, 140, 140, 144, 144, 144, 144, 144, 144, 144, 153, 153, 153, 153, 162, 170, 170, 170 ।

(44) वही : पृ. क्रमशः 16, 17, 40, 43, 45, 69, 70, 71, 71, 77, 77, 99, 99, 101, 105, 125, 144 ।

(45) वही : पृ. क्रमशः 11, 12, 14, 16, 17, 18, 19, 21, 22, 25, 28, 33, 34, 37, 49, 65, 75, 88, 93, 107, 118, 65, 141, 142, 162, 167 ।

(46) द्रष्टव्य : शब्दों का सफ़र : पहला पड़ाव : अजित वडनेरकर : पृ. 318 ।

(47) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः 19, 34, 46, 83, 111, 135, 148, 156, 12, 12 ।

(48) द्रष्टव्य : प्रेमचंद और अछूत समस्या : डॉ. कांतिमोहन : पृ. 69-106 ।

(49) द्रष्टव्य : एक पंखुड़ी की तेज़ धार : शमसेर सिंह नरूला : उपन्यास की भूमिका से : भूमिका लेखक : डॉ. शिवदानसिंह चौहान ।

(50) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः 16, 19, 23, 23, 35, 61, 73, 91, 92, 93, 93, 94, 153, 159 ।

(51) वही : पृ. क्रमशः 25, 25, 25, 26, 29, 29, 29, 29, 36, 40, 41, 44, 46, 46, 94, 50, 54, 94, 110 ।

(52) वही : पृ. 106 ।

(53) वही : पृ. क्रमशः 103, 110, 118, 120, 121 ।

(54) वही : पृ. क्रमशः 92, 126, 126, 126, 126 ।

(55) द्रष्टव्य : लेख – 'सर्वकालीन प्रासंगिकता के कवि : कबीर' : चिंतनिका : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृ. 13 ।

(56) मानसमाला : पृ. 28 ।

(57) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः 16, 22, 28, 39, 50, 56, 63, 104, 110, 127, 135, 156, 159 ।

(58) वही : पृ. 156 ।

(59) मेरे पिताजी की डायरी से ।

(60) काशी का अस्सी : पृ. 79 ।

(61) द्रष्टव्य : पीली छत्रीवाली लड़की : उदय प्रकाश : पृ. 90 ।

(62) द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास में व्यंग्य : डॉ. किशोरसिह राव : पृ. 53 ।

(63) द आइडिया आफ कोमेडी : मेरीडिथ : पृ. 391 ।

(64) मानसमाला : पृ. 39 ।

(65) सूखे सेमल के वृन्तों पर : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृ. 69 ।

(66) काशी का अस्सी : पृ. 39 ।

(67) वही : पृ. 112 ।

(68) टुकड़े-टुकड़े जिन्दगी ' के दोहे : सूखे सेमल के वृन्तों पर : पृ. 55 ।

(69) काशी का अस्सी : पृ. 24 ।

(70) वही : पृ. 31 ।

(71) वही : पृ. 34 ।

(72) वही : पृ. 172 ।